मानव मन्दिर

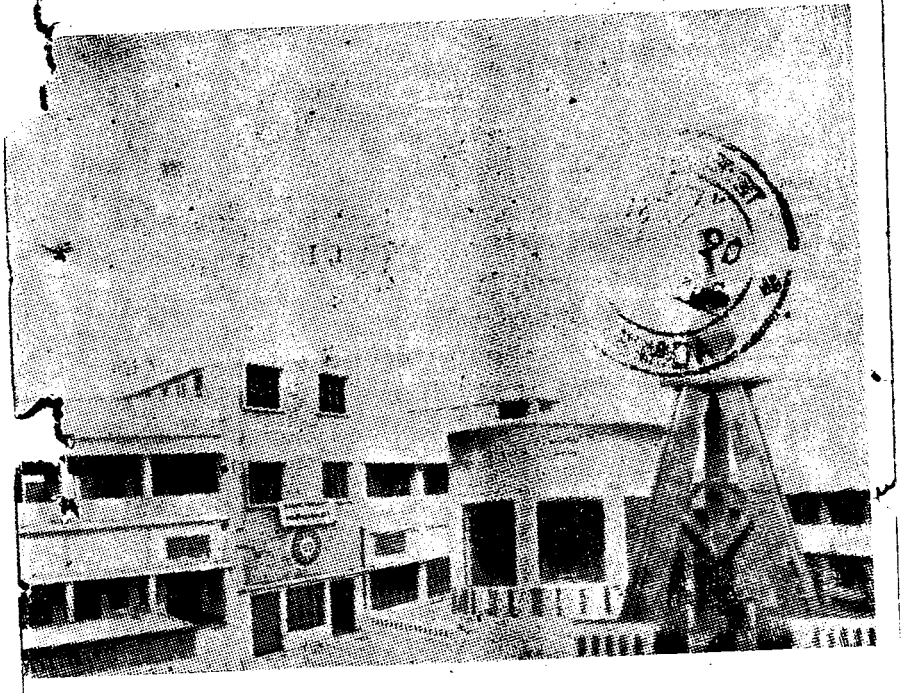

फकीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट

सुतैहरी रोड, होशियारपुर

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur.
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Hoshiarpur.
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Sutehti Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the total	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10-6-90 Signature of Publisher

Printed and Published by : Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग 17-6-1990 को होगा।

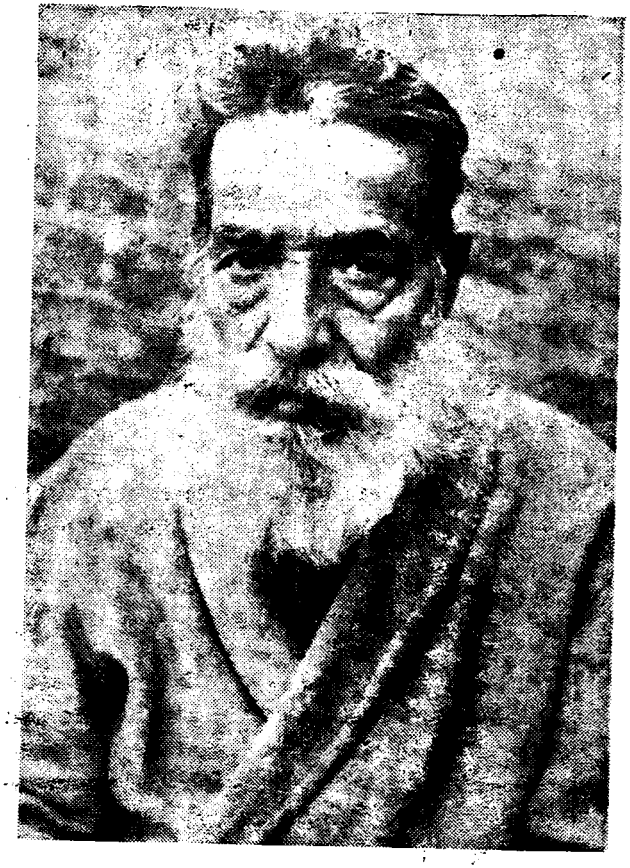

Param Sant Param Dayal Pt. Faqir Chand Ji Mahara

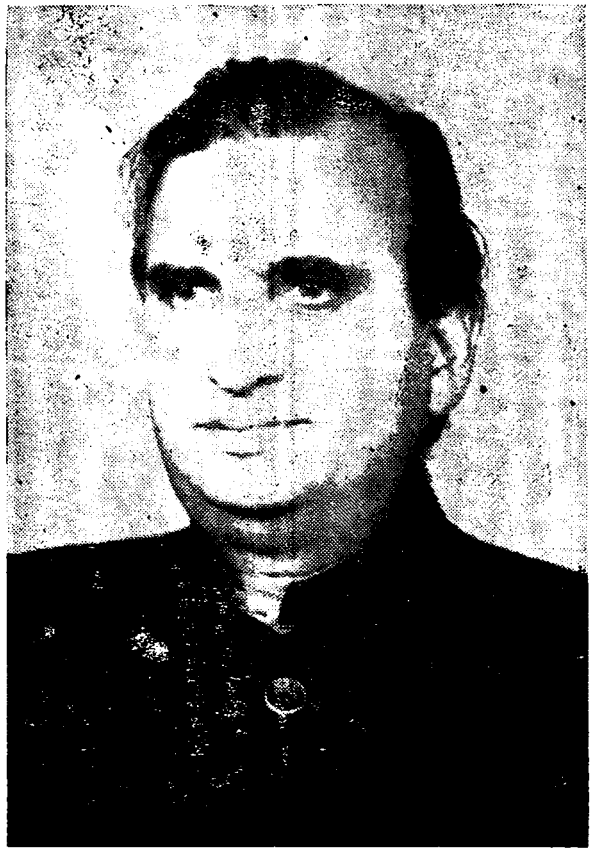

Param Sant Manav Dayal Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

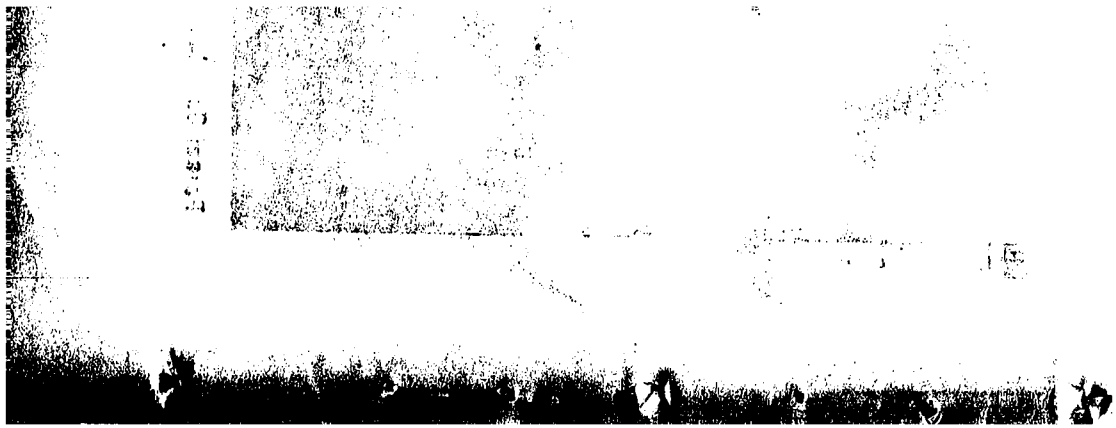

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN
मनुष्य बनो

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 17	सोमवार, 11 जून 1990	संख्या 2

सत्संग के आठ वचन

दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी वर्मन

दूसरा वचन

राधास्वामी मत, मत कहलाता है और सभी मत-मतान्तरों को मत ही कहते हैं, लेकिन मत-मतान्तरों में अन्तर होता है। सब मतों की हैसियत अलग होती है और उनके नाम से ही उनका पता चलता है। राधास्वामी अगर मत है, तो वह पन्थ का मत है और केवल पन्थ के साथ, पन्थ की गरज़ के साथ, पन्थ के साधन के साथ और साथ ही पन्थ के अन्तिम उद्देश्य के साथ इसका सम्बन्ध है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि राधास्वामी प्रकाश और शब्द का मार्ग है। प्रकाश से प्रत्येक वस्तु दिखाई दे जाती है और शब्द से हर बात बताई और सुनाई जाती है। संसार में प्रत्येक बात को जानने के लिए देखना तथा सुनना लाज़िमी है। अपनी आँखों से देखो और अपने कानों से सुनो, न दूसरों की आँखों से देखो, न दूसरे के कानों से सुनो।

प्रकाश और शब्द का मार्ग स्वतन्त्रता का मार्ग होता है इसलिये कहा गया है कि सत्संग करते हुए हृदय के नेत्र और हृदय के कानों को भली प्रकार खोलकर इनसे काम लो। प्रमाण ज्ञान तुम्हारा ही हो दूसरों का नहीं, इन्द्रिय

ज्ञान तुम्हारा ही हो, दूसरों का नहीं। इसी प्रकार मानसिक ज्ञान, अनुमान और विचार भी तुम्हारे हों, दूसरों के नहीं और साथ ही शब्द ज्ञान भी तुम्हारा हो किसी दूसरे का नहीं। दूसरे के आसरे होने का मतलब है उसके आधीन होना। राधास्वामी मत का उद्देश्य यह है कि आधीनता और कमी की जड़ को एकदम उखेड़ कर फेंक दिया जाये। गुरु की आज्ञा है :—

आप आप को आप पहिचानो।
कहा और का नेक न मानो॥

इसका प्रमाण निम्नलिखित है :—

तुम हुए मुहताज गैरों के तो दुःख सहना पड़ा।
जब हुए महकूम, मातहती में फिर रहना पड़ा॥
यह कमी मुहताजगी, हरगिज़ नहीं मेराज़ है।
गर हुए मुहताज आज़ादी का फिर न राज़ है॥
जब नहीं आज़ाद, फिर सोचोगे क्या तुम दोस्तो।
पड़के मुहताजी की खंदक में गिरोगे दोस्तो॥
सुहबते मुराशद में आकर, सीखो यह सच्चा सबक।
हो गये आज़ाद जब, पाओगे उस दम राज़ हक॥
देखना गैरों की आँखों से, नहीं मकसूद है।
कान से गैरों के सुनने में कहाँ बहबूद है॥
बन्द तोड़ो बन्दिशों का, ज़िन्दगी को दो जवाब।
फिर मिलेगी सच्चे मानों में, तुम्हें राहे सवाब॥

सच्चा गुरु तुम्हें किताबों के झमेले में नहीं फँसायेगा और न ही किसीकी राय या प्रमाण या सनदों के आधीन बनायेगा उसकी शिक्षा तो स्पष्ट है। आओ और सुनो। आओ और ग़ौर करो। आओ और देखो। जब तुम्हारे दिल में यह विश्वास जम जाये कि जो बातें तुमसे कही जा रही हैं, वे सच्ची तथा ठीक हैं, तब भी उनको अपनी बुद्धि के

तराजू पर तोलो। बुद्धि तुम्हें यों ही नहीं दी गई। प्रकृति में इसका कुछ न कुछ प्रयोजन अवश्य है। बिना प्रयोजन के किसी भी मनुष्य को कोई शारीरिक या मानसिक हथियार नहीं दिया जाता। यदि तुम्हें हाथ दिये गये हैं इन हाथों का कुछ न कुछ प्रयोजन अवश्य है। अगर पाँव मिले हैं तो इनका मिलना भी उद्देश्य से खाली नहीं है। इसी प्रकार आँख, कान, नाक आदि का भी कुछ न कुछ प्रयोजन है।

इसी प्रकार मन तथा बुद्धि भी तुम्हारे हथियार हैं। इनसे अगर काम नहीं लिया जाये तो यह निकम्मे हो जायेंगे, बेकार हो जायेंगे। किसी भी सत्संग में यह बात कभी नहीं की जाती कि तुम शरीर, मन या बुद्धि हो, बल्कि यह कहा जाता है कि तुम शरीर, मन या बुद्धि नहीं हो, तुम इनसे बिलकुल अलग, बिलकुल निराले हो। शरीर, मन, बुद्धि तुम्हारे हथियार हैं और तुम इनके मालिक हो, स्वामी हो। जो व्यक्ति अपने को देह या शरीर, मन तथा बुद्धि समझ लेता है, काल की चोट से उसका बचना असम्भव हो जाता है। उसे सदा काल कर्म की मार सहनी पड़ती है और स्वार्थी दुनिया, उसको दबोच कर कठपुतली की तरह नाच नचाया करती है। अब तुम ही बताओ कि तुम क्या चाहते हो। स्वतन्त्र होना चाहते हो या बन्धन की अवस्था में पड़ा रहना पसन्द करते हो। यदि वास्तव में तुम कैदी बनकर बन्धन में रहना चाहते हो तो सत्संग में जाने की ज़रूरत नहीं है। सत्संग तो जिज्ञासुओं के लिए है। यदि तुममें जिज्ञासा ही नहीं, तुम मुमुक्षु नहीं और तुम्हें मुक्ति की इच्छा ही नहीं, तो सत्संग से तुम क्या लाभ उठाओगे?

तर्क दुनिया, तर्क उक़बा[1], तर्क हो वहमो कयास[2] ।
तर्क का सीखो सबक़, तब आओ तुम मुरशिद के पास ।।
फिर बतायेगा तरीक़त[3], का तुम्हें वह रास्ता ।
और तरकीत का सुनायेगा, तुम्हें वह ज़ाबता[4] ।।
रहरवे[5] तरीक़त हो, तो रास्ते में लगो ।
है सफर दरपेश[6], जब सच्चे मुसाफिर तुम बनो ।।
करके तै सारे मनज़िल आओ सूये हक़[7] अभी ।
हक़ को हक़ समझो लगाओ हक़ ही से तुम अपना जी ।।
हक़ ही आज़ादी नहीं, इनमें कई हैं कैदो बन्द ।
आके सुहबत में ज़रा मुरशद के इसको समझो बन्द ।।
कैद की हालत किसीको, कब भला मतलूब है[8] ।
राहे आज़ादी सभी को, हर जगह मतलूब[9] है ।
क्यों ये बंदे हैं इलायक[10] के झमेलों में असीर[11] ।
सोचो इन नुक्तों को छोड़ो इनकी यकसर[12] दारो गीर ।।
वहम के फंदों में फँसकर, हो गये क्यों मुबतला ।
इनको जो छोड़ेगा समझो जीतेजी वह छुट गया ।।
पाके आज़ादी को अपनी, ज़ात की कर इल्तफात[13] ।
लाख बातों की सुनाता हूँ, तुझे मैं एक बात ।।

इन ख्यालात को दृष्टि में रखते हुए संगत करो, नहीं तो सत्संग से कोई लाभ नहीं होगा । अगर कर्मकाण्ड में फँसना था, ती सामाजिक सम्प्रदाय क्या बुरे थे । उनमें ही फँसे रहते । अगर इस रास्ते पर आये हो तो पन्थ में पैर रखो । जो पैर पड़े सदा आगे ही पड़े । गुरु मशालरूपी निष्ठा बनकर धीरे-२ अपने सत्संगों द्वारा तुमको प्रकाश का चमत्कार दिखायेगा तथा दैवी शब्द के संकेत बतायेगा ।

1) परलोक, 2) भ्रम, 3) अन्तरीय शुद्धि, 4) विधि 5) निष्ठा मार्ग पर चलने वाला, 6) सामने, 7) सतमार्ग की ओर 8) पसन्द, 9) चाहना, 10) लटके हुए, 11) कैद, 12) पूर्णतया, 13) रहना 14) ध्यान ।

सत्संग दिल से करो और दिल लगा कर सुनो। यह कोई रस्मी या रिवाजी बात नहीं है। यह कोई मुँह से मन्त्र पढ़ना हाथों से अक्षत और पानी छोड़ने का मार्ग नहीं है। यह कोई और ही वस्तु है। अगर मन कहीं है, कान कहीं हैं और ध्यान कहीं है, तो गुरु की सेवा बिलकुल व्यर्थ हैं।

अगर गुरु के सत्संगों या वचनों में प्रभाव नहीं, तो वह गुरु नहीं है और यदि शिष्य गुरु के वचनों को ग्रहण नहीं करता, उन पर चलता नहीं तो वह शिष्य नहीं, पशु है। गुरु की संगत तो की किन्तु फिर भी कोरे के कोरे रहे। अफ़सोस! बात क्या हुई।

सतगुरु मारा तान कर, शब्द सुरंगी बान।
मेरा मारा जो जिये, तो कर नहिं गहूँ कमान॥
जा का गुरु है आंधरा, चेला खरा निर्बन्ध।
अन्धे को अन्धा मिला, पड़ा काल के फन्द॥
सोये सोये जो जना, नींद रहे अलसाय।
सोये को सोया मिला, केहि विधि कौन जगाय॥
बँधे से बँधा बँधा, सब विधि रहा बँधाय।
सेवा कर निर्बन्ध की, पल में बंध कटाय॥
पूरा सतगुरु न मिला, सुनी अधूरी सीख।
सांग पहन कर जति का, घर-२ मांगे भीख॥
पूरे से पूरा मिला, सब विधि हुआ भरपूर।
कायर कोई क्यों कहे, जब वह जोधा सूर॥

यदि गुरु की संगत में जाने से शिष्य के दुनिया के झमेले बढ़ते ही चले जायें, तो समझ लो वहाँ दोष है। सम्भव है वह दोष गुरु में हो या सम्भव है कि वह दोष चेले में हो। हो सकता है शिष्य अब तक गुरुप्रिय नहीं बना और सम्भवतया गुरु भी शिष्यप्रिय नहीं बना। यह दोष है ज़रूर जिस पर ध्यान देना आवश्यक है।

अंधा गुरु है बहरा चेला, दोनों नर्क कुण्ड के टेला।
अन्धे गुरु का छोड़ दे संग, चढ़ेगा नांहि सत्त का संग ॥

सत्संग करने का ढंग यह है कि सब वृत्तियों को एक करके गुरु के सामने शिष्टाचार के साथ बैठे। गुस्ताखी और बेजा जुर्रत की आदत छोड़ दी। यह अदब (शिष्टाचार) का मार्ग है। जिसमें अदब ही नहीं वह परमार्थ की सम्पदा कैसे प्राप्त कर सकता है? ऐसे शिष्टाचाररहित व्यक्ति का मन न तो चंचलता के स्वभाव का त्याग कर सकता है और न ही गुरु के वचनों को ठीक तरह से सुन सकता है। सत्संगी क्या इतना भी नहीं समझते कि शिष्टाचार है क्या वस्तु। यह शिष्टाचार इसलिये नहीं कि तुम्हारा गुरु तुमसे मान की इच्छा रखकर तुमसे अपना मान कराना चाहता है। नहीं, कभी नहीं। यहि अदब का लिहाज़ और ध्यान रहेगा, तो तुम्हारे अपने ही मन में संयम आयेगा। अदब करने का मतलब है सभ्य बनना। मन की शिष्टता और संयम के बिना न तो कोई बाहरी आनन्द ले सकता है और न ही अन्तरीय। तुम्हारी बेअदबी की आदत तुमसे अन्दर की कमाई कैसे करा सकेगी?

प्राय: लोग कहते हैं कि मन बड़ा चंचल है भाई! कभी सोचा है कि मन क्यों चंचल है। इसलिये क्योंकि तुम संयम से नहीं रहते, कभी मन की सम अवस्था का विचार ही नहीं करते। जब तुम किसी बड़े आदमी के या मजिस्ट्रेट के सामने जाते हो, तो तुम्हारी आँख, कान और मन सब उसकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। उस समय तुम और किसी का ध्यान नहीं करते और ध्यान से उसकी बातों को सुनते हो, तभी तो तुम पर उसका प्रभाव पड़ता है।

निकम्मी आदत पड़ जाने के कारण जब ध्यान करने बैठे, गुरु का ख्याल नहीं आता, मन के भीतर हिर्स और

हविस की पुतलियाँ नाचने लगती हैं। देख ! यह है बेअदबी के पाप का दण्ड। भूलोक के हकीम के पास जाकर, तो तुम भीगी बिल्ली बन जाते हो, परुन्तु आकाशीय हकीम के पास पहुँच कर व्यर्थ के भ्रम को पुतलियाँ नचाते हो। ज़रा अदब के मार्ग का लिहाज़ करना सीखो, तब तुम्हारे भीतर और बाहर प्रकाश और शब्द दोनों की वर्षा होने लगेगी।

दिल कहीं है, आँख जाती है कहीं।
ख्वाब ग़फ़लत की सुनाती है कहीं॥
आये सुहबत में, हुए हो महब ख्वाब।
क्यों न वारिद[1] होगा, फिर दिल में अज़ाब[2]॥
दिल की हो तादीब[3], दिल बस में रहे।
फिर सुनो मुरशिद को जो तुमसे कहे॥

यह सत्संग की एक विधि है।

आँखें गुरु की शक्ल की ओर हों, इधर-उधर भटकने न पावें, ताकि गुरु की शकल का प्रतिविम्ब, आँखों की राह से होकर तुम्हारे मन पर पड़े और मनरूपी दर्पण अपने भीतर उसके प्रतिबिम्ब को ले ले। कान गुरु की ओर खुले रहें ताकि उसके वचनों की धार, कानों के रास्ते से होकर मन और मस्तिष्क में प्रवेश कर जाये। यही शिष्टाचार है इस शिष्टाचार को अपना कर एक सप्ताह तक साधन करो। बाहरी सत्संग की सहायता से एक ही सप्ताह के अन्दर, मन काबू में आने लगेगा और अपनी चंचलता भूल जायेगा। तब तुम गुरु के साथ तन से, मन से, श्रवण से और आत्मा से समता की दशा में आ जाओगे।

---

1) आयेगा, 2) दुःख, 3) गढ़त।

छोटी छोटी बातें

दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी वर्मन

(1) राधास्वामी धाम में बहुत से कुत्ते रहते हैं। बुलाओ तो बेचारे दौड़े हुए चले आते हैं और दूर भगाओ तो बेचारे भाग भी जाते हैं। मैं कभी-२ अपने जीवन को इन कुत्तों के जीवन से तुलना किया करता हूँ और देखता हूँ कि बहुत सी बातों में ये कुत्ते मुझसे बहुत ही अच्छे हैं आप यदि किसी कुत्ते को एक बार रोटी का एक टुकड़ा दे दो और वह जीवन भर आपको नहीं भूलेगा।

जब मेरे गुरु ने मुझे अपने भण्डार से कृपा का एक टुकड़ा दिया, तो मुझे चाहिए तो यह था कि मैं एक कुत्ते की तरह उन्हें कभी भी न भूलता। लेकिन वास्तव में कुत्ते की भाँति मेरी दशा वैसी है या नहीं मैं नहीं जानता। होना तो ऐसा ही चाहिए था, लेकिन जो कृतज्ञता की विशेषता कुत्ते में देखता हूँ, वह मुझे अपने में दिखाई नहीं देती। कभी-२ इस बात पर लज्जा आती है कि मैं कुत्ते से भी गया बीता हूँ।

कबीर साहिब अपने आपको राम का कुत्ता कहा करते थे। मैं अपने आपको गुरु का कुत्ता कहलाने में शर्माता क्यों हूँ।

कबीर कुत्ता राम का, मोतिया मेरा नांव।
तू तू करे तो निकट हूँ, दुर-२ करे तो जांव ॥

(2) गुरु ने आदेश दिया कि तुम अपने आपको दीन और आधीन समझो, घमण्ड या अभिमान की बातों से बचते रहो। मेरी सदा यही कोशिश रही है कि मैं दीन और आधीन रहूँ। मैंने दीनता और आधीनता को अपने जीवन का आदर्श बना रखा है। जिस समय मैं दीनता तथा आधीनता के इस अंग में पूरा उतर जाऊंगा, उस समय फ़ारसी कवि की जुबान होकर रहूंगा :—

"मन आँ मोरम कि दर पायम व मलिन्द।
न जँबू रम, कि अज नेशम बनालिद ॥
कुजा खुद शुकरई न्यामत गुजराम।
कि जोरे मरदुम अजारी तदारम ॥"

अर्थात् "मैं हूँ चीन्टी, कर दो मुझको पायमाल।
मैं नहीं भिड़ हूँ, जो हूँ जान का बवाल ॥
शुक्र उसके फैज़ का, क्यों कर करूँ।
मर्दम आजारी की आदत करूँ ॥

(3) चार-पाँच दिन की बात है, मेरी स्त्री मुझे स्वप्न में मिली। उसका रूप देवताओं जैसा था। मुझे देखकर कहने लगी, "तुम मर गये, मुर्दा हो गये, पर तुम्हारी चर्म-पूजा की आदत नहीं गई। अभी तक भी तुम्हें भोग-विलास की इच्छा है। मुर्दों को इन बातों से क्या काम है? मैंने उससे कहा, "मैं तो अभी तक जीवित हूँ, मरा तो नहीं। शरीर है, इसलिये शारीरिक सम्बन्ध भी मेरे साथ हैं।"

वह बोली, "तुम्हें मरे हुए तो एक मुद्दत हो गई। मैं भी मर गई, तुम भी मर गये। मैं तो सूक्ष्म जगत् में चली गई और तुम तो मरने के बाद भी स्थूल जगत् में पड़े हुए हो।"

मैं हँसा और डससे पूछा, "यह कैसे सम्भव हो सकता है कि आदमी मर जाये और उसे मरने का विश्वास न हो ?"

उत्तर मिला, "बहुत से लोग मर जाते हैं और मरने के बाद, वे पशुजगत् में चले जाते हैं और अपना कल्पित जगत् बना लेते हैं। वही नाते-रिश्ते वही काम। परन्तु अज्ञानता के कारण, इनको ज़रा भी समझ नहीं होती कि वे अपने ख्याल के ही जगत् में रहते हैं। जितने रूप उनको इधर-उधर दिखाई पड़ते हैं, सब के सब कल्पित रूप हैं। भूलोक के जीवन की तरह सबके साथ इनका व्यवहार होता है। यदि उन्हें कोई समझावे कि तुम मरे हुए हो, तो उन्हें कभी विश्वास न होगा, क्योंकि वे सांसारिक विचारों के साक्षात् चित्र बने रहते हैं। ठीक यही दशा तुम्हारी है। तुम अपने आपको जीवित मानते हो, परन्तु मैं तो तुम्हें मुर्दा समझती हूँ। तुममें अब भी दुनिया का ख्याल अब तक प्रबल है, परलोक का ख्याल कम। इसलिये तुम्हारी यह दशा है। अच्छा है कि अब तुम चोला बदलो और बात को समझो, इस बात को चित्त में रखो कि अन्त में :—

एक दिन माटी में मिल जाना
माटी सिर पर माटी मुँह में, माटी ठौर ठिकाना।
माटी का व्यौहार जगत् है, माटी धोना नहाना ॥
एक दिन माटी में मिल जाना।
क्यों अभिमान करे नर बौरे, जगत् है स्वपन समाना।
माटी से उत्पत्ति है तेरी, माटी में फिर जाना ॥
एक दिन माटी में फिर जाना ॥
माटी की देही है तेरी, माटी पीना खाना।
माटी ओढ़ना माटी बिछौना, माटी अन्त निदाना ॥
एक दिन माटी में मिल जाना ॥

मैंने कहा, "आज मुझे वह नया ख्याल मिला है कि आदमी मर कर भी अपने आपको जीता समझता है।

वह हँस कर बोली, "तुम बहकी-२ बातें करते हो। मुर्दा तो तुम उसी ही दिन हो गये, जिस दिन अपने गुरु की सेवा में गये। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि "मुरीद" मुर्दे का नाम है। मुरीद अपना जीवन खोकर गुरु का जीवन लेकर जीता है। अपनी तथा दूसरे लोगों की ओर से वह मुर्दा ही है, केवल गुरु की ओर से वह ज़िन्दा है। तुम तो चिता की भूमि में, अपनी लाश रखे हुए, उसकी रखवाली कर रहे हो। यह बहुत बड़ी ग़लती है। जब तुम गुरु ही के चेले बन गये तो फिर सांसारिक जीवन कैसा! यदि अब भी तुम्हारा जीवन अपना रहा, तो कहाँ का गुरु और कहाँ का चेला?"

मैंने उसे धन्यवाद दिया। मेरी समझ में आ गया कि ध्यान का मसला बहुत गहरा है। उसी समय मेरी नींद खुल गई।

जो कि देखा ख्वाब था, जो कुछ सुना अफसाना था॥

(4) एक साधु द्वार-२ भीख माँगा करता था। जो किसी ने दे दिया ले लिया। यदि किसी ने नहीं दिया तो चुप हो रहा। एक दिन जब उसे किसीने गालियाँ दीं, तो किसी हमदर्द व्यक्ति ने कहा, "बाबा! तूने ऐसी कठिनाई की ज़िन्दगी क्यों ग्रहण की है?" उसने उत्तर दिया, "जो जिसके पास होता है, वह वही ही तो देता है। जिसके पास धन होता है, वह धन देता है। जिसके पास विद्या है, वह विद्या देता है। जिसके पास कपड़े हैं, वह कपड़े देता है। पर जिन लोगों ने गालियों की कमाई की है, उनके पास गालियों ही की तो पूँजी है वह गालियाँ नहीं देगा तो और क्या देगा? और कहाँ से लायेगा? इसमें साधु को बुरा

मानने की कौनसी बात है। वह झोली भर कर जो भी लाता है, गुरु के नाम पर ही लाता है और उसे गुरु ही के अर्पण कर देता है। उसे किसीसे क्या लेना देना, वह तो अपने कर्त्तव्य को ही करता रहता है। मैं किसीको बुरा क्यों कहुँ ओर मुझे किसीको बुरा कहने का अधिकार ही क्या है? जिसकी जैसी कमाई वैसी ही उसकी खुदाई।'

"जिस तरह बद की बदी जाती नहीं।
नेक के दिल में बदी आती नहीं॥'

मथुरा में एक चौबे रहता था। चौबे हमेशा दान-दक्षिणा लिया करते हैं और उसी पर ही उनकी जीविका चलती है। उस चौबे का एक वैश्य जजमान आर्यसमाजी हो गया और उसने प्रण किया कि अब भविष्य में किसी भी चौबे को दान नहीं देगा। यह प्रण उसने चौबे के सामने ही किया। चौबे जी ने उससे कहा, "दाता! तेरा भला करे। तू अगर दान नहीं देता तो न दे, मैं तो तुम्हें सदैव आशीर्वाद ही दूँगा, क्योंकि मेरा काम तो आशीर्वाद देने का ही है।

बात आई और गई। एक दिन उस वैश्य की स्त्री जब चौबे की स्त्री से मिली तो कहने लगी, "माई! अब तो तुम कभी मेरे घर में भी नहीं आती हो क्या बात है?" चौबाइन बोली, "अब तो तुम्हारे पति आर्यसमाजी हो गये कैसे आऊँ? वैश्य स्त्री ने समझाया, "तू मेरे घर अवश्य आना। मैं चौबे जी को समझा-बुआ कर तुम्हें दान-दक्षिणा अवश्य दिलाऊंगी। यदि तुम नहीं आओ तो चौबे जी को अवश्य भेज देना।"

दूसरे दिन चौबे जी नये-२ कपड़े पहिन कर वैश्य के घर गये और उनको आशीर्वाद दिया। वैश्य की स्त्री ने

पति से कहा, "चौबे जी को कुछ देना चाहिए।" संयोग से उस दिन वैश्य के घर केले की तरकारी बनी थी और केले के छिलके एक किनारे पड़े हुए थे। आर्यसमाजी वैश्य ने उन छिलकों को उठाकर चौबे जी को दिया। चौबे जी ने खुशी से छिलके लेकर अपने नये दुपट्टे में डाल दिये। क्योंकि केले के छिलके ताज़ें थे उनका नया दुपट्टा काला पड़ गया। घर पर आया जब चौबे जी की पत्नी ने उनके दुपट्टे की हालत देखी तो बोली, "यह कहाँ का कूड़ा बटोर लाये हो तुम ? चौबे जी ने सारी बात बता दी और साथ ही पत्नी को विश्वास दिलाया कि अब उनके जजमान की देने की आदत पड़ गई है। आज यदि छिलका दिया है तो कल गूदा भी देगा। आज तो इस छिलके की ही तरकारी खायेंगे।

चौबाइन ने मसालेदार तरकारी बनाई। पति-पत्नी दोनों ने मिलकर बड़े प्रेम से वह तरकारी खाई। रात को दोनों को दस्त आने लगे। हालत बहुत ही बिगड़ गई। चौबे के अड़ौसी-पड़ौसी वैश्य के घर जा कर बोले, "चौबे और चौबाइन ने कल केले के छिलके की तरकारी खाई। अब उनकी दशा बहुत ही बुरी है।"

वैश्य की स्त्री ने पति की लानत-मलामत की। उसे दवा-इलाज के लिए चौबे के घर भेजा। वह उनके घर गया। दोनों की बुरी हालत को देखकर डाक्टर को उनको देखने के लिए बुलवाया। फीस दी, दवा के पैसे दिये चौबे-चौबाइन किसी तरह ठीक हो गये।

दूसरे दिन चौबे वैश्य के घर गया। आज उसकी दशा बदली हुई थी। वैश्य तथा उसकी पत्नी ने एक थान मलमल का, दो-चार रुपये तथा एक थाल मिठाई चौबे को भेंट में

दिया। चौबे दोनों को आशीर्वाद देकर अपने घर आया और पत्नी से कहने लगा, "अब जजमान सुधर गया है। इसलिये ही तो कहता हूँ कि जजमान जो कुछ भी दे, ले लो। बुरा देता है, तो बुरा ले लो, भला देता है तो भला ले लो। कभी न कभी तो दाव पड़ कर ही रहेगा।"

दाता दयाल जी के अनमोल वचन

1. अपनी संगत अच्छी रखो। बुरी संगत से बचते रहो क्योंकि संगत का असर ज़रूर पड़ता है। ढाक और बबूल के वृक्ष भी जो चन्दन के आसपास रहते हैं चन्द दिनों में खुशबूदार हो जाते हैं। जब वृक्ष तक संगत के असर को कबूल लेते हैं तो इन्सान पर संगत का असर क्यों न होगा।
2. जो वृक्ष ज़्यादा फलदार होते हैं वे पृथ्वी की तरफ झुके रहते हैं। इसी प्रकार समझदार और बड़े लोग नम्रता से जीवन गुज़ारते हैं।
3. संसार और कुछ नहीं सिर्फ मेरा और तेरा अपना संसार है। मुक्ति और कुछ नहीं है। मेरेपने और तेरेपने को मिटा देने का नाम मुक्ति है।

बाहर का गुरु तथा अन्तर का गुरु

परमसन्त परम दयाल फकीर चन्द जी महाराज

ज्ञान दीजे ज्ञान दाता, ज्ञान के भण्डार से।
सहज छुटकारा मिले, सब को कठिन संसार से॥
कहने को तो बन्ध मुक्ति, कल्पना मन की सही।
बिन दया सतगुरु वह, मिलती नहीं है जीते जी॥
नाम का दे आसरा, चरणों में अपने लीजिए।
शब्द की महिमा बताकर, पार भव से कीजिए॥
सच्चिदानन्दम्, अखण्डम् केवलम् निजरूप हो।
निज दया से जाय दुःखदायी महा भव कूप खो॥
आपका है आसरा, और आपका विश्वास है।
राधास्वामी तार दो, अब आप ही की आस है॥

जीवन में चेतनता आई। किसी वस्तु की खोज हुई। मौजाधीन 1905 में मैं दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज के चरण-कमल में गया। उन्होंने जीवन के संघर्ष, वासना, दुःख तथा भ्रम को दूर करने के लिए, मुझे राधास्वामी मत की शिक्षा के अनुसार नाम दिया। क्योंकि इस मत की वाणियों में सब मत-मतान्तरों का खण्डन था, इसलिये पहिले तो मैं घबराया परन्तु बाद में मैंने यह तय किया कि राधास्वामी मत का गहराई से अध्ययन करके, उस मत पर चलते हुए, मेरे जो अनुभव होंगे वह दुनिया

को बता जाऊंगा। अपने अनुभव के बाद मैंने हिदायतनामा, सुरत संवाद, माया संवाद, बारहमासा आदि लिखे और पाँच सत्संग पाँचों स्थानों के आधार पर दिये। मुझे कोई दावा नहीं कि मैं बिलकुल ठीक हूँ। परन्तु इतना कह सकता हूँ कि मैंने क्रियात्मक रूप से किसी वस्तु की खोज में प्रयत्न किया है। उस खोज को मालिक की खोज कह लो, परम ज्ञान, परम सुख, परम शान्ति कह लो। मैं हर बात को क्रियात्मक रूप से देखता हूँ।

आप देखते हो कि जब कोई दुर्घटना हो जाती है, तो बहुत से लोग उस दुर्घटना की जगह पर दौड़े हुए आते हैं। अपनी प्रकृति के अनुसार, कोई मृतकों की जेबों से माल निकालने लगते हैं, कोई घायलों की मरहमपट्टी करते हैं। भारत के विभाजन के समय देश के बड़े-२ सेवक कहलाने वाले हिन्दुओं ने मुसलमानों का सामान चुराया ऐसे ही पाकिस्तान से भागने वाले हिन्दुओं का सामान मुसलमानों ने लूटा। किन्तु इसके साथ ही साथ मानवता धर्म में विश्वास रखने वाले भारतीय हिन्दुओं ने अपनी जान पर खेल कर अपने मुसलमान मित्रों की जान बचाई। इसी तरह कई मुसलमानों ने पाकिस्तान से भागने वाले हिन्दुओं की जान बचाई। इससे सिद्ध होता है कि मानवता संसार से एक दम लुप्त नहीं हो गई।

यह संसार द्वन्द्वस्थल है। यह जगत् त्रिगुणात्मक जगत् है। इसमें दुःख भी है और सुख भी है। मृत्यु भी है जीवन भी है। दुर्घटनाओं का होना भी है और देशों का नष्ट होना भी है। महान् सन्त, राधास्वामी मत या सन्तमत, कबीर-मत या हिन्दुओं के वेदशास्त्र, इस द्वन्द्वमय जगत् से बचने के उपचार बताते हैं। सन्तों का मार्ग निवृत्ति का मार्ग है;

वह केवल उन महापुरुषों के मस्तिष्क की उपज है। जो वस्तु हमारे शरीर के अन्दर रहती हुई, मन के बुरे या अच्छे भाव-विचारों का भान करती है, जो प्रकाश में रहती हुई प्रकाश को देखती है, शब्द में रहती हुई शब्द को सुनती है और शब्द की साक्षी है, जो दुःख-सुख का अनुभव करती रहती है, सन्तों ने उस वस्तु को संसार से निकल जाने का उपाय भी बताया है। वे उपाय मेरे पाँच सत्संगों में वर्णन किये गये हैं। आज का शब्द है :—

ज्ञान दीजे ज्ञान दाता ज्ञान के भण्डार से।
सहज छुटकारा मिले सबको कठिन संसार से॥

वास्तव में, ही यह संसार बहुत ही संकटमय तथा कठिन है। मैंने बड़े-२ सन्तों की दशा देखी है। पलटू साहिब को ईर्ष्या के कारण दूसरे साधुओं ने खौलते हुए तेल की कड़ाही में डाल कर खौला दिया। कितना बड़ा अत्याचार था। ऐसे-२ अत्याचार तो हर धर्म वाले ही करते आये हैं। इतिहास इसका साक्षी है।

यह ज्ञान दिया जाता है कि सुरत को अपने अन्तर में ले जा कर पिण्ड, अण्ड और ब्रह्माण्ड से परे ले जाओ। मैं ले जाता हूँ और उस उच्च अवस्था में रहता भी हूँ। परन्तु शब्द के आगे की अवस्था में मैं कभी नहीं जाता। शब्द के स्तर पर निःसन्देह कोई दुःख नहीं परन्तु मैं सदा तो वहाँ नहीं रह सकता।

बाहरी जगत् के प्रभाव सन्तों पर भी प्रभाव डालते हैं और साधु-महात्माओं पर भी, संसारी लोगों की तो बात ही क्या है। जब तक शरीर में हो अभ्यास करते चले जाओ। मैं शब्द में जाता हूँ फिर लौट के आऊँ या नहीं आऊँ। इसका मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है। मेरा अनभव बताता है कि

यदि अन्त समय में किसी की सुरत शब्द में चली जाये तो सम्भवतया वह फिर वापिस न आये।

अब प्रश्न उठता है जो हम पर जुल्म होते हैं, हमारी सम्पत्ति को लूटा जाता है या कोई हम पर ज़बरदस्ती हमला करके अत्याचार करता है, उसका क्या उपचार है? इसका उपाय यह है कि देश के राज्य को चलाने वाले इस बात की पूरी ज़िम्मेदारी लें कि किसी निर्बल पर ताकतवर आदमी अत्याचार न करे। मैं राजनीतिज्ञों से यही कहता चला आ रहा हूँ कि वर्तमान चुनावप्रणाली के कारण, देश में अत्याचार को रोका नहीं जा सकता। क्यों? क्योंकि नेता बनने के इच्छुक लोग ऐसे आदमियों के वोट इकट्ठे करते हैं, जो अनुचित रूप से लूट-खसूट तथा अत्याचार के पक्ष में होते हैं। जब ऐसे नेता को ऐसे-२ अत्याचारी वोट देकर जितायेंगे, ऐसे लोगों से सिवाय अत्याचार के तुम आशा ही क्या कर सकते हो?

वास्तविक छुटकारा तो तब मिलेगा, जब मनुष्य जन्म-मरण के चक्कर में नहीं फँसेगा। जब तक मनुष्य शरीर में है, चाहे वह सन्त हो महात्मा हो, परमसन्त हो या बहुत बड़ा साधक, उसको भी बाहरी संसार छोड़ेगा नहीं। जब पलटू साहिब जैसे परमसन्त को दुनिया ने नहीं छोड़ा, नामदेव को नहीं छोड़ा, ईसा मसीह को नहीं छोड़ा, महात्मा गान्धी को नहीं छोड़ा तो मामूली आदमी की तो हस्ती ही क्या है! तो फिर संसार से बचने का उपाय क्या है? उसका उपाय यह है कि शासन ऐसा होना चाहिए, उसके विधान ऐसे होने चाहिएँ कि लोगों को उनका भय होना चाहिए। जहाँ शासन का भय नहीं होता, वहाँ जनता में शान्ति नहीं आ सकती। निर्धन व्यक्ति भले ही शासन से डरे, परन्तु

अमीर लोग शासन से बिलकुल नहीं डरते, रिश्वतखोरी तथा घूँस का बोलबाला है। शासन भी कैसे न्याय करे, उसके कार्यकर्त्ता अधिकतर भ्रष्ट हैं। मैं समझता हूँ जो काम राजनैतिक नेता नहीं कर सके, वह काम धर्मों, सम्प्रदायों तथा पन्थ के नेता कर सकते हैं। कैसे ? ऐसे कि वे अपने अनुयायियों को ऐसी शिक्षा दें जिससे लोगों का आचरण ठीक हो जाये। आज के युग में यह देखा गया है कि साधारणतया महात्माओं तथा धार्मिक आचार्यों के, गुरुओं के, मसजिदों, मन्दिरों, गुरुद्वारों तथा गिरजाघरों के मठाधीशों या मालिकों के आचरण ठीक नहीं हैं। जब उनका स्वयं का ही आचरण ठीक नहीं है तो अनुयायियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

मैंने गुरु बनकर जो देखा, उससे मेरी आँखें खुल गईं। गुरुओं में सच्चाई नहीं है और वे हमें सच्चा बनने, नेक बनने तथा भक्त बनने की शिक्षा देते हैं। आप ही बताइए कि ऐसे गुरुओं का क्या प्रभाव पड़ेगा। मेरे पास एक सरदार आया करता है। वह किसी समय एक साधु का सच्चा चेला था। उसने पूरे-बारह वर्ष तक साधु की सेवा की। बारह वर्ष के बाद वह साधु बीमार पड़ गया। वह प्रति-दिन प्रातः एक कुएँ पर जा कर एक लोहे के डोल में बँधी जंजीर को ज़ोर-२ से खड़खड़ा कर आवाज़ करता और शब्द गाता। एक दिन सरदार ने अपने गुरु से पूछा, "महाराज ! आप ऐसा क्यों करते हैं ?

साधु ने उत्तर दिया, "बेटे ! यदि मैं ढोल बजा-२ कर गाऊँ नहीं तो लोग मेरे पास कैसे आयेंगे, मुझे भक्त कैसे कहेंगे तथा रुपया पैसा कैसे देंगे ? अब आप ही सोचो, जिस महात्मा के अन्दर इतनी हेराफेरी है, वह दुनिया का

कल्याण कैसे करेगा ? भोलेभाले लोगों को ठगने के लिए ऐसे महात्मा कहते हैं, "हाँ, हाँ हम अपने आशीर्वाद से आपको धन, सम्पत्ति तथा सन्तान दे सकते हैं, तुम्हारी मनोकामनाएँ पूरी कर सकते हैं। हाँ, मरते समय तुम्हें सतलोक में ले जाने के लिए आ भी सकते हैं।" कितना बड़ा धोखा है यह। मेरे पास रोज़ाना ऐसे-२ आदमी आते हैं, जो कहते हैं, "बाबा ! आप तो हमारे काम बनाते रहते हैं। मुसीबत के समय आपका रूप प्रकट हो कर हमारे बिगड़े काम बना जाता है, हमें मुसीबत से छुड़ा जाता है।" परन्तु मैं लोगों को धोखे में नहीं रखना चाहता। मैं तो कहीं किसी की सहायता करने जाता नहीं और न ही मुझे इसका तनिक ज्ञान ही होता है ! जो कुछ भी श्रद्धालु सत्संगी अनुभव करता है, वह उसका अपना ही विश्वास होता है।

मैं आपको मन, कर्म तथा वचन से शुद्ध रहने तथा सदा आशावादी रहने की शिक्षा देता हूँ।

नाम का दे आसरा, चरणों में अपने लीजिए।
शब्द की महिमा बताकर, पार भव से कीजिए॥

शब्द दो प्रकार का है। अन्तर का शब्द तथा बाहर का शब्द। अन्तर का शब्द तो निर्वाण के लिए है, जबकि बाहर का शब्द वह है, जो सद्गुरु के मुख से वाणी निकलती है :—

गुरुवाक्यम् मूलमंत्रम।

गुरु के मुँह से जो वचन निकलता है, वह है बाहर का शब्द। जब तक कोई व्यक्ति बाहर के वचन के भाव को न समझ कर, इस जीवन में भी अपना कल्याण न करे, तो निर्वाण और मुक्ति का वह कैसे अधिकारी हो सकता है? गुरु-वाक्य से पूरा गुरुग्रन्थ भरा पड़ा है। वेद व अंजील

गुरु के वाक्य से भरे पड़े हैं। परन्तु आज के युग में कितने लोग गुरु के वाक्य को ग्रहण करते हैं? कोई बिरला ही। क्यों? क्योंकि गुरु के वाक्यों की व्याख्या करने वाले स्वयं उन वाक्यों को नहीं समझते। यदि समझते भी हैं तो उन पर चलते नहीं। गुरु की दया से क्या मतलब है? गुरु की बात को गौर से सुनना, उसको समझना फिर उस पर चलना ही गुरु की दया है।

हजूर रायबहादुर सालिगराम साहिब ने, जिन्होंने राधास्वामी पन्थ चलाया, अपने परम गुरु स्वामी जी की बड़ी भारी सेवा किया करते थे। यहाँ तक कि उन्होंने अपने गुरु की टट्टी साफ की, उन्हें पालकी पर लिए फिरे, अपना सारा धन देते थे। उनकी वाणी सिद्ध करती है कि गुरु ने अर्थात् बाहर के स्वामी जी ने उनको असली भेद बताया। 'सार वचन' में लिखा है :—

गुरु ने दीना भेद अगम का,
सुरत चली तज देश भरम का।

बाहर का गुरु क्या करता है? भेद देता है, यही भेद मैंने गुरु से पाया। उन्होंने मेरे जिम्मे तीन जिम्मेवारियाँ सौंपीं। पहिली जिम्मेवारी थी निबल, अबल और अज्ञानी जीवों की सहायता करना, दूसरी जगत्-कल्याण का काम करना और तीसरी जिम्मेवारी थी जीवों को भवसागर से पार होने की विधि बताना। वह मैं कर चला।

नाम का दे आसरा, चरणों में अपने लीजिए।
शब्द की महिमा बता कर, अपना सेवक कीजिए॥

सद्गुरु वचन कहता है, परन्तु जो आदमी उसकी वाणी को समझने की कोशिश ही नहीं करता, उस पर साधन नहीं करता सद्गुरु उस पर क्या करेंगे? सोचो! यह बख़्तावर सिंह बैठा

हुआ है। वह कहता है कि दो वर्ष पहले वह मेरे दशहरे के सत्संग पर आया था। सत्संग सुनते समय वह लगातार टकटकी लगाये मेरे चेहरे को देखता रहा। 11 वर्ष पहिले बखतावर सिंह ने किसी गुरु से नाम लिया था, किन्तु उसको कुछ लाभ नहीं हुआ था। वह बोला, मेरे सत्संग को सुनते-२ उसके अन्तर में प्रकाश हो गया और शब्द खुल गया। आज बहुत से लोग कहते हैं कि गुरु तुम्हारी सुरत चढ़ा देता है, प्रकाश दिखा देता है। इसी विचार से लोग गुरुओं के पीछे मारे-२ फिरते हैं, उनको धन देते हैं, उनके नाम का डिंडोरा पिटाते फिरते हैं, उनके आश्रम बनवा देते हैं। मुझे मालूम नहीं इसमें कितनी सच्चाई है। परन्तु मेरा अनुभव तो यह कहता है कि यह सब पाखण्ड है। वहाँ सैकड़ों आदमी बैठे थे ऐ बखतावर ! मुझे क्या पता था कि मैंने तेरी सुरत चढ़ा दी थी और तुम्हें प्रकाश दिखा दिया था या शब्द सुना दिया था। मेरे प्यारे बखतावर सिंह ! मैंने तेरी सुरत नहीं चढ़ाई। तेरी सुरत चढ़ी अवश्य होगी, परन्तु मेरे कारण नहीं बल्कि तुम्हारे अपने विश्वास तथा सच्ची लगन के कारण या फिर रेडिएशन के नियम के अनुसार। लोगों का यह भ्रम कि उनकी सुरत गुरु ही चढ़ाता है, धर्म और पन्थों में कट्टरता का कारण बन रहा है और इसी ही भ्रम से संसार का अनिष्ट हो रहा है। सुरत चढ़ाने का बस एक ही नियम है। ध्यान से सद्गुरु की ओर देखते रहो, लगातार देखते रहो, जितनी देर हो सके आँखें भी मत झपकाओ। जो गुरु वचन कह रहा है, उसे ध्यान से सुनो, समझो, तुम्हारी सुरत स्वयं ही चढ़ जायेगी। तुम्हारी सुरत चढ़ने का कारण तुम्हारा अपना ही विश्वास और श्रद्धा है।

लोग कहते हैं कि सद्गुरु लोगों के अन्तर में प्रकट

होता है। ग्वालियर का रामस्वरूप इस समय यहाँ आपके सामने बैठा है। वह कहता है कि आठ वर्ष पहिले मेरा रूप उसके अन्दर प्रकट हुआ। वह मुझे जानता ही नहीं था। वह मास्टर था परन्तु छुप के डाक्टरी का काम करता था, लोगों को दवाइयाँ देता था। एक बार उस गाँव के एक सेठ को बीमारी में एक ऐसी दवाई दी कि वह नुक्सान कर गई और सेठ मौत के नज़दीक पहुँच गया। जब रामस्वरूप को इस बात का पता चला तो वह घबड़ा गया। उसने सच्चे दिल से मालिक से पुकार की कि वह उसकी लाज रख लें। रामस्वरूप का कहना है कि उसी समय प्रकाश हुआ और उस प्रकाश के अन्दर उसने मेरे रूप को देखा। रामस्वरूप इस समय आपके सामने ही बैठा है, इससे सारी बात पूछ लो। रामस्वरूप आगे कहता है कि मेरे रूप ने उसे कहा कि मरीज़ को अमुक इन्जैक्शन दो, वह ठीक हो जायेगा। रामस्वरूप ने वैसा ही किया और मरीज़ ठीक हो गया। मेरे प्यारो! मैं सच कहता हूँ कि मैं तो रामस्वरूप को जानता ही नहीं था, मैं उसके अन्दर प्रकट नहीं हुआ और न ही मैंने उसे इन्जैक्शन लगाने को कहा। फिर वह कौन था? ऐ मानव! वह सच्चा सद्गुरु तथा सच्चा मालिक तो तेरे अपने ही हृदय में रहता है। अज्ञानी जीव उसे बाहर ढूँढ़ते फिरते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि पहिले तो बाहर के गुरु का सेवक बनना पड़ता है। बाहर के गुरु की संगत में जाना, उसकी बातों को ध्यान से सुनना, टकटकी लगाये उसको देखना इत्यादि से शिष्य धीरे-२ आगे बढ़ता जाता है। फिर है नाम, जो अन्तरीय है। वास्तविक गुरु तो सत, अलख, अगम में रहता है। मैंने दाता दयाल जी का दरबार भी देखा था

और हज़ूर साँवले शाह का दरबार भी। बड़े-२ महापुरुषों के जीवन और उनके चेलों और सम्बन्धियों के जीवन भी देखे। मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यह सारा का सारा संसार या तो जीवों के अपने कर्मों का फल है या भगवान् की अपनी इच्छा। मैं तो सोचता हूँ कि मैंने जीवन में जो कुछ भी किया, वह मेरा अपने ही कर्म के कारण था। अपने आपको एक खब्त में डाला, किन्तु धन्य था वह खब्त, जिससे मुझे यह ज्ञान हो गया :—

तेरी लीला कौन जाने, तू तो अपरम्पार है।

जो लोग ऐसे महापुरुषों की सेवा करते हैं, जो कि निष्कपट और निःस्वार्थ हैं, वे धन्य हैं। स्वार्थ के लिए ईश्वर की भक्ति करने या गुरु की सेवा करने वाले तो संसार में आपको करोड़ों व्यक्ति मिलेंगे, परन्तु निःस्वार्थ सेवा करने वाला कोई बिरला ही होता है। मेरे पास सिवाय सद्भावना के आपको देने के लिए कुछ भी नहीं, सबको शान्ति।

गुरु की आज्ञा दृढ़ कर महिये, गुरु की आज्ञा ही में रहिए।
गुरु आज्ञा बिन काज न कीजे, हानि होय तो होने दीजे॥

बुद्धधर्म के अनुसार निर्वाण-मार्ग

लेखक :

परमसन्त मानव दयाल

डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

भगवान् बुद्ध को चार सत्यों का ज्ञान एक दम या अनायास प्राप्त नहीं हुआ था, परन्तु सदाचार को अपने व्यादहारिक जीवन में अपनाने के बाद ही हुआ था। अन्य सभी भारतीय दर्शन के सिद्धान्तों की भाँति बुद्धमत भी यह मानता है कि केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही मोक्ष के लिए पर्याप्त नहीं है, नैतिक जीवन का अर्थ, धर्म का आचरण करना है, न कि उसका परिचयमात्र। बुद्ध ने नैतिकता की विस्तारपूर्वक व्याख्या की है और मुमुक्षुओं के मार्ग-दर्शन के लिए नैतिक जीवन का अष्टविध मार्ग निर्धारित किया है। बनारस के उपदेश में बुद्ध ने घोषणा की है, "हे भिक्षुओ ! दुःख के मार्ग के अन्त का आर्य, सत्य अष्टविध मार्ग पर चलने का है, जो इस प्रकार है :—

1) सम्यक् दृष्टि, (सन्तुलित दृष्टि)
2) सम्यक् उद्देश्य, (सन्तुलित उद्देश्य)
3) सम्यक् वचन, (सन्तुलित वचन)
4) सम्यक् कर्म, (सन्तुलित कर्म)
5) सम्यक् जीवनयापन, (सन्तुलित जीवन यापन)
6) सम्यक् प्रयास, (सन्तुलित प्रयास)

7) सम्यक् व्यवहार, (सन्तुलित व्यवहार)
8) सम्यक् समाधि (सन्तुलित समाधि)

सम्यक् दृष्टि (Right Views)

बुद्ध ने यह अनुभव किया कि जब तक जिज्ञासु के मन में भ्रान्त अथवा मिथ्या धारणाएँ उपस्थित रहती हैं, तब तक वह मोक्ष पर आगे नहीं बढ़ सकता। विचार तथा कर्म, सिद्धान्त तथा ठोस जीवन; विश्वास तथा व्यवहार परस्पर सम्बन्धित तथा एक-दूसरे पर आश्रित हैं। जब तक हम सम्यक् दृष्टि को नहीं अपनाते हम अहंभाव से मुक्त नहीं हो सकते। सम्यक् ज्ञान ही ऐसा उपाय है, जो जीव के दुःख के मूल कारण अविद्या को दूर कर सकता है। यही कारण है कि बुद्ध ने सम्यक् दृष्टि अथवा सम्यक् ज्ञान को मुमुक्षु के लिए प्रथम गुण स्वीकार किया है।

सम्यक् उद्देश्य

मुमुक्षु का दूसरा लक्षण सम्यक् उद्देश्य या सम्यक् आकांक्षा है। सम्यक् उद्देश्य, सम्यक् दृष्टि के बगैर नहीं हो सकता। सम्यक् उद्देश्य को सदाचार के अष्टविध मार्ग में दूसरा स्थान दिया गया है। सुकरात ने धर्म अथवा गुण को ज्ञान ठीक ही कहा था, क्योंकि कोई भी व्यक्ति आकस्मिक नैतिक नहीं हो सकता। अरस्तु ने इस बात पर बल दिया है कि धर्म एवं सद्गुण एक प्रकार का अभ्यास है। अतः अरस्तु ने सम्यक् उद्देश्य अथवा सद्भावना पर बल दिया है। यह सत्य है कि एक धर्मपरायण व्यक्ति वह है, जो धर्म के असूलों पर चलता है, न कि वह जो धर्म के विषय में केवल जानकारी ही रखता है। किन्तु सदाचार

की भावना, किसी व्यक्ति के मन में उस समय तक उपस्थित नहीं हो सकती, जब तक कि उसमें यह ज्ञान न हो कि धर्मपरायणता का अर्थ क्या है। बुद्ध की दृष्टि में सम्यक् उद्देश्य का अर्थ त्याग की आकांक्षा है, जो कि मनुष्य के मन में सभी प्राणियों के प्रति प्रेम उत्पन्न करती है। सम्यक् उद्देश्य मुमुक्षु को सम्पूर्ण मानव जाति की सेवा की प्रेरणा देता है।

सम्यक् वचन

भाषा व्यक्ति के चरित्र को अभिव्यक्त करती है। इसके अतिरिक्त, बुद्धमत अहिंसा को परम धर्म मानता है और अहिंसा का अर्थ है प्राणियों को मन, वचन तथा कर्म से क्षति न पहुँचाना। अहिंसा का अर्थ केवल शारीरिक अहिंसा ही नहीं, अपितु मानसिक अहिंसा भी है। अनेक बार हमसे बोले गये शब्द, या वचन शस्त्रों की अपेक्षा अधिक घातक सिद्ध होते हैं। वचन व्यक्ति के उद्देश्य की अभिव्यक्ति होते हैं, और जिस व्यक्ति के प्रति वचन कहे जाते हैं, वह उन वचनों के अनुसार ही सुख या दुःख का अनुभव करता है। जैनमत भी वचन के नियन्त्रण पर बहुत ज़ोर देता है और शाब्दिक हिंसा को, शारीरिक हिंसा के, ही समान मानता है। इसके अतिरिक्त सम्यक् वचन का नियम यह विधान करता है कि किसी भी व्यक्ति को, असत्य वचन, निन्दा, कटु वचन तथा निरर्थक भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। महात्मा गान्धी सम्यक् वचन के प्रति विशेष दृष्टिकोण रखते थे। उनके अनुसार, "दूसरों के अवगुणों को न तो देखो, न ही उनके विषय में सुनो न ही कहो।" सम्यक् वचन एक ऐसा आदेश या गुण है, जो आज भी उतना ही महत्त्व रखता है, जितना कि बौद्धकाल

तथा उससे भी पहिले रखता था। भाषा मनुष्य का आभूषण और उसके चरित्र का द्योतक है।

सम्यक् कर्म

सम्यक् दृष्टि, सम्यक् उद्देश्य तथा सम्यक् वचन नैतिक दृष्टि से, उस समय तक निरर्थक हैं, जब तक कि वे सम्यक् कर्म को उत्पन्न नहीं करते। वास्तव में, सम्यक् कर्म, जो बुद्धमत के अनुसार, निःस्वार्थ कर्म है, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् उद्देश्य तथा सम्यक् वचन का परिणाम होता है। शुभ वेद-मन्त्रों का उच्चारण तथा कर्मकाण्ड का पालन मात्र ही व्यक्ति को नैतिक नहीं बनाता। यही कारण था कि बुद्ध ने कर्मकाण्ड का विरोध किया। पवित्र गंगा में स्नान करने मात्र से मनुष्य पवित्र नहीं हो जाता। वह स्नान उसे उस समय तक पवित्र नहीं करता, जब तक कि वह मिथ्या भाषण, जीवों की हिंसा और दूसरों की सम्पत्ति का हरण करना छोड़ नहीं देता। कानून तथा विधान किसी भी व्यक्ति को उस समय तक नैतिक नहीं बना सकते, जब तक कि वह इन नियमों का पालन नहीं करे। राष्ट्र संघ (League of Nations) तथा संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) जैसी अन्त-र्राष्ट्रीय संस्थाएँ इसलिये असकल रहती हैं, क्योंकि इनके द्वारा पारित प्रस्ताव, केवल प्रस्ताव ही रह जाते हैं और उनका पालन सदस्य राष्ट्रों से किया नहीं जाता। सम्यक् कर्म ही व्यक्ति, राष्ट्र तथा विश्व के लिए नैतिकता की एकमात्र कसौटी है, विश्व शान्ति का एकमात्र उपाय है।

सम्यक् जीवन यापन

बुद्ध ने असत्यता, धोखेबाज़ी, स्वार्थ के लिए अन्य लोगों को भ्रान्ति में डालना इत्यादि अवगुणों से मुक्ति पाने को, चरित्र के निर्माण के लिए आवश्यक माना है। मुमुक्षु का प्रत्येक कर्म, उसके सम्यक् चरित्र की

अभिव्यक्ति होना चाहिए। कोई व्यक्ति चाहे वह राजनीतिज्ञ हो या धर्म-उपदेशक, व्यापारी हो अथवा शासक, छात्र हो अथवा अध्यापक, स्त्री हो अथवा पुरुष, उसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह शुद्ध चरित्र वाला हो। चरित्र है क्या ? चरित्र हमारे संकल्प, विचार तथा भावनाओं की आदतों की समिष्टि है। वास्तव में, सम्यक् चरित्र, व्यक्ति का वह परिवर्तन है, जो उसे विषय-भोग आदि के अशुभ जीवन से ऊपर चढ़ा कर, बोधिसत्त्व अथवा सन्त के जीवन के स्तर पर ले जाता है। बोधिसत्त्व ऐसा व्यक्ति होता है, जो इस जीवन में जीते-जी दुःख से निवृत्ति प्राप्त कर लेता है और सदा दूसरों के निर्वाण के लिए चेष्टा करता रहता है।

सम्यक् प्रयास

सम्यक् प्रयास का अर्थ संवेगों का सन्तुलन है। दूसरे शब्दों में, सम्यक् प्रयास सदैव सन्मार्ग पर चलने की आदत बनाए रखना है। सम्यक् प्रयास के लिए निम्नलिखित पाँच विधियाँ प्रतिपादित की गई हैं :—

1) अच्छे विचारों के प्रति ध्यान,
2) उस भय का सामना करना, जो दूषित विचारों से उत्पन्न हुआ है।
3) दूषित विचारों से ध्यान को दूर रखना।
4) लोभ के प्रतीकार के लिए, दूषित विचारों के कारणों का विश्लेषण करना।
5) दूषित विचारों को शारीरिक प्रयत्न के द्वारा दूर करना।

जब एक व्यक्ति का ध्यान शुभ विचार की ओर आकर्षित होता है, तब धीरे-२ उसकी रुचि उसमें स्वाभाविक

रूप से बढ़ जाती है और वह शुभ को चुनने तथा अशुभ को त्यागने की आदत बना लेता है इसी प्रकार, जब एक व्यक्ति के सामने उसके दूषित विचारों के परिणाम आ जाते हैं, उसे हानि होती है, तो वह सम्यक् प्रयास की आदत बना लेता है। दूषित विचारों को ध्यान से दूर करने के लिए, मन पर निषेधात्मक रोक (यानि कि ऐसे बुरे विचार नहीं पैदा करने) लगाई जाती है, जिसके फलस्वरूप धीरे-२ सत्-कर्म करने की आदत पड़ जाती है। कई बार ऐसा भी देखने में आया है कि विषय-भोग में आवश्यकता से अधिक लिप्त रहने वाले व्यक्ति सहसा साधु बन जाते हैं।

सम्यक् मन अथवा सम्यक् विचार

सम्यक् मन अथवा विचार का अर्थ है भय, क्रोध, प्रसन्नता, शोक आदि जैसे इन संवेगों को नियन्त्रण में लाना। इस दृष्टि से सम्यक् मन या विचार भगवद्गीता की स्थितप्रज्ञ की धारणा के अनुकूल है। बुद्ध ने इस बात पर बहुत ही बल दिया है कि प्रत्येक मुमुक्षु ईश्वर या गुरु पर निर्भर हुए बिना, सत्य का अनुभव स्वयं ही करे। उन्होंने यह घोषणा की थी कि उनके शिष्य उनके विचारों का अनुकरण नहीं करें, अपितु उन्हें स्वयं अनुभव करने के बाद ही अपनायें। मम्यक् विचार का उद्देश्य संवेगों पर नियन्त्रण करके ज्ञान प्राप्त करना है। बुद्ध ने स्वयं भी सम्यक् विचार के द्वारा ही आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया था और वह आशा करते थे कि दूसरे व्यक्ति भी ऐसा अनुभव करें। किसी भी व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन उस समय तक सम्भव नहीं है, जब तक कि उसके विचार सम्यक् नहीं हों और जब तक व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन नहीं होता, तब तक मोक्ष सम्भव नहीं होता।

सम्यक् ध्यान

सम्यक् ध्यान, वह अन्तिम विधि है, जो अन्ततोत्गत्वा मुमुक्षु को समाधि की अवस्था पर पहुँचाती है। बौद्ध आचार-शास्त्र में ध्यान के निम्नलिखित चार स्तर माने गये हैं :—

पहिला स्तर है प्रसन्नता और आनन्द देने का स्तर, जो एकान्तता अन्तर्दृष्टि तथा तर्क से उत्पन्न होता है। इसमें मुमुक्षु आर्य-सत्यों पर ध्यान लगाता है।

ध्यान की दूसरी अवस्था मुमुक्षु की वह आन्तरिक अवस्था है, जिसमें ध्यान लगाने से आनन्द तथा शान्ति की प्राप्ति होती है। इस स्तर पर वह केवल चेतन तर्क नहीं होता, जो प्रथम स्तर पर होता है।

तीसरे स्तर पर सभी संवेग और पक्षपाती दृष्टिकोण समाप्त हो जाते हैं।

चौथे स्तर पर, जिज्ञासु समाधि के ऊँचे स्तर पर पहुँच जाता है और पूर्ण शान्ति का अनुभव करता है।

इसके अतिरिक्त बुद्धमत में अनुशासन, के शारीरिक तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम भी हैं। शरीर को नियन्त्रण में रखना बहुत ज़रूरी समझा गया है। बुद्धमत में ध्यान का अर्थ, वृत्तियों को बाहरी जगत् से खेंच लेना और उच्चतम शान्ति की अनुभूति करना है। बुद्ध के अनुसार ध्यान की अवस्था को अधिक स्पष्ट करने के लिए एम० पासिन (M. Paussin) के विचार प्रस्तुत करना उपयोगी होगा, "जब एक बार मन किसी मिट्टी की थाली अथवा अन्य वस्तु पर ध्यान टिकाने के अभ्यास के द्वारा, दृढ़ हो जाता है, तो वह उसके द्रव्य और गुणों को त्याग देने में सफल हो जाता है। समाधि लगाने वाला क्यक्ति चिन्तन और तर्क

से मुक्त, ध्यान की अवस्था से आरम्भ करता है। वह इच्छा, पाप, विफलता, चिन्तन, प्रसन्नता, सुखदभाव इत्यादि को त्याग देने में सफल दो जाता है। वह हर प्रकार के द्रव्य, स्पर्श और भेद आदि की धारणा से ऊपर उठ जाता है। शून्य पर ध्यान लगाने से, और शून्य के ध्यान से प्राप्त असम्प्रज्ञात ससाधि से, वह एक ऐसी अवस्था पर पहुँच जाता है, जिसमें न तो चेतना होती है और न ही अचेतना। अन्त में वह भाव और धारणा के वास्तविक शून्य में विलीन हो जाने का अनुभव करता है।"

समाधि की इस उच्चतम अवस्था को मन की शून्यता समझना एक भारी भूल होगी। यह तो वास्तव में, एक ऐसी पूर्णता की अवस्था है, जहाँ पर मन की सभी शक्तियों को, बाहर से हटा कर, अन्तस् में, इस प्रकार केन्द्रित कर दिया जाता है, जिससे व्यक्ति को आत्मानुभूति हो जाती है, वह विरोधाभासों से ऊपर उठ जाता है।

निर्वाण का स्वरूप

भारतीय दर्शन के अन्य सिद्धान्तों की तरह बुद्धमत भी दुःखों के अन्त तथा आत्मानुभूति को जीवन का लक्ष्य मानता है। यह सिद्धान्त, इस पूर्ण अस्तित्व की अवस्था को निर्वाण कहते हैं। यह वह अवस्था है, जो पूर्णतया निषेधात्मक नहीं है, किन्तु एक ऐसा स्तर है जो सभी विरोधों सापेक्षताओं से परे निरपेक्ष है। बौद्धमत के शून्यवाद की धारणा के प्रति बहुत ही भ्रान्तियाँ हैं। बुद्ध की शून्यता का एक विशेष अर्थ है। बुद्ध के शब्दों में, "सभी बुद्ध और सभी प्राणी, उस विश्वव्यापी मन के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं, जिसके लिए किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं हो सकता।

और अविनाशी है। वह न हरा है न पीला। न उसका आकार है, न अभिव्यक्ति वह न प्राचीन है, न नवीन। न लम्बा है, न छोटा। न ऊँचा है न नीचा। वह तो नाम, भाषा और ठोस, सभी विधियों से परे है। वह उस असीम शून्य की भाँति है, जिसकी कोई परिभाषा ही नहीं।

निर्वाण या मोक्ष वह आध्यात्मिक अनुभव है जो पावन अस्तित्व से सम्बन्धित है। वह एक ऐसी दिव्य अथवा ब्राह्मी स्थिति है, जिसको प्राप्त करके व्यक्ति, भौतिक अस्तित्व को वैसे ही पुनः प्राप्त नहीं करता, जैसा कि भगवद्गीता की स्थितप्रज्ञता की धारणा बतलाती है तथा जैसे कि औटो एक ईसाई सन्त आध्यात्मिक अवस्था में अनुभूत करता है। सन्त औटो (Otto) अपनी पुस्तक **पावन की धारणा** में धार्मिक अनुभव के इस अंग को रहस्यात्मक कहता है, जिसका अनुभव बाहरी जगत् सम्बन्धी अनुभव से कोई मेल या समानता नहीं रखता। वह तो केवल एक चिह्न है। क्योंकि यह 'पूर्णता अन्य' है, इसलिये यह एक प्रकार की शून्यता है। उपनिषदों में, जिस धारणा के अनुसार, ब्रह्म को वह विश्वातीत सच्चा माना गया है, जिसमें मोक्ष के समय, व्यक्तिगत आत्मा समा जाती है। बुद्ध की निर्वाण की धारणा उसी उपनिषद्दिक धारणा की पुष्टि करती है। अतः हम कह सकते हैं बुद्ध की मोक्ष या निर्वाण की धारणा तत्त्वात्मक दृष्टि से उपनिषदों से भिन्न नहीं हैं।

बुद्धमत के अनुसार, मोक्ष या निर्वाण व्यक्तिगत आत्मा का विश्वव्यापी आत्मा से एकत्व है, जो कि उस मुमुक्षु या जिज्ञासु को वास्तव में ही अनुभूत हो सकता है, जो इस उच्च अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात्, सभी जीवों से प्रेम करने लगता है, किसीसे भी घृणा नहीं करता। बौद्ध-दर्शन के अनुसार, "हमारा मूलभूत या वास्तविक

"बुद्ध स्वभाव" सम्पूर्ण सत्य है, जो समझा नहीं जा सकता, वह शून्य है, सर्वव्यापी है, शान्त और शुद्ध है। वह अद्भुत है, रहस्यात्मक है। उसके सम्बन्ध में तो केवल इतना ही कहा जा सकता है। बुद्ध अबस्था या निर्वाण की अवस्था वह आत्मिक अवस्था है, जो इसी जीवन में ही प्राप्त की जा सकती है।

ऊपर दी गई बुद्ध के अष्टविधमार्ग की रूपरेखा, आत्मा की प्रगति के आठ स्तरों की व्याख्या करती है। परन्तु बुद्ध के महायान सिद्धान्त के अनुसार, निर्वाण प्राप्ति के लिए आठ नहीं अपितु दस स्तर, भूमिएँ अथवा अवस्थाएँ बताई गई है जो निम्नलिखित हैं :—

1) प्रमुदित भूमि अथवा प्रसन्नता की अवस्था है, जो बुद्धि के सामान्य स्तर से ऊपर उठ जाने के बाद प्राप्त होती है। इस अवस्था पर जिज्ञासु अथवा बोधिसत्व ऐसे-२ संकल्प करता है, जो उसको आध्यात्मिक मार्ग पर चलने में सहायक हों।

2) 'विमला' अवस्था, वह अवस्था है, जिसमें जिज्ञासु सभी भौतिक वस्तुओं के नश्वर भाव को पहिचान लेता है।

3) प्रभाकरी अवस्था, बोधिसत्व की वह अवस्था या भूमि है, जिसमें जिज्ञासु सन्तोष और सहिष्णुता का अभ्यास करता है। वह क्रोध, घृणा तथा संशय को त्याग देता है तथा विश्वास, दया वीतराग आदि सद्गुणों को अपनाता है।

4) चौथी अवस्था या भूमि को 'अर्चिषमति' कहते हैं। इस अवस्था में जिज्ञासु अपने अहंभाव को त्याग कर, सम्यक् कर्म में मस्त होकर सद्गुणी बन जाता है।

5) 'सदूरजाया' पाँचवीं अवस्था या भूमि है, जिसमें ध्यान और समाधि की प्रधानता होती है। इस अवस्था में

जिज्ञासु या बोधिसत्व अजय बन जाता है।

6) छठी अवस्था या भूमि, अभिमुक्ति भूमि है, जिसका अर्थ है मोक्ष की ओर मुँह करना। इस अवस्था में बोधिसत्व नैरात्मवाद के आधारभूत सिद्धान्तों को समझ लेता है। परन्तु वह इस अवस्था पर भी पूरी तरह से सन्तुष्ट नहीं होता, वह इस अवस्था में बुद्ध बनने की आशा रखता है।

7) सातवीं अवस्था या भूमि 'दूरगम भूमि' है, जिसको प्राप्त करके जिज्ञासु मोक्ष या निर्वाण प्राप्ति के लिए सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेता है। यह एक ऐसी अवस्था है जिस पर पहुँच कर जिज्ञासु अचल हो जाता है।

8) आठवीं अवस्था या भूमि बोधिसत्व की वह अवस्था है जिसमें वह किसी से भी आसक न होने का निश्चय करता है। फिर भी वह समाज में धर्मप्रचार आदि की क्रियाएँ करता रहता है।

9) बोधिसत्व की नौवीं अवस्था या भूमि 'साधुमति' कहलाती है। यह एक ऐसी अवस्था है, जिसमें जिज्ञासु कर्म तो करता है लेकिन उनमें बिलकुल लिप्त नहीं होता। वह कर्म करता है, बिलकुल निष्काम भाव से, लोगों के कल्याण के लिए, उसमें उसका अपना स्वार्थ नहीं होता। वास्तव में यह नौवीं अवस्था बोधिसत्व की अन्तिम अवस्था या भूमि है, क्योंकि आगे वाली दसवीं अवस्था पर तो वह स्वयं तथागत अथवा बुद्ध बन जाता है। नौवीं अवस्था या भूमि यह संकेत करती है बौद्ध आचार-शास्त्र सामूहिक है, क्योंकि मूलरूप से आध्यात्मिक होने के कारण, वह निःस्वार्थता को महत्त्व देता है और व्यक्तिगत लाभ का विरोध करता है। वास्तव में, बौद्धमत निर्वाण की ओर क्रमिक विकास

है, वह व्यक्ति का मानवीय आचारशास्त्र पर आधारित विकास है। विशेषकर बुद्धमत के महायान सिद्धान्त का यह विश्वास है कि न ही केवल भिक्षु, अपितु साधारण मनुष्य भी जाति, धर्म और लिंग के भेद के बिना, बोधिसत्व बन सकता है।

मोक्ष या निर्वाण का अर्थ वास्तव में वह अवस्था है, जो सत्, असत् और शुभ, अशुभ से परे है। परन्तु फिर भी निर्वाण की प्राप्ति केवल सत् और शुभ को व्यावहारिक जीवन में उतारने के द्वारा ही हो सकती है। वरुण या इन्द्र, या ब्रह्मा जैसी उच्चतम योनियों में भी मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है। अव्यय पुरुष की अन्य अभिव्यक्तियाँ यद्यपि मानव के शारीरिक अस्तित्व से कहीं अधिक शक्तिशाली तथा चिरस्थायी हैं, फिर भी वह मानवीय अभिव्यक्ति की अपेक्षा निष्कृष्ट हैं। क्योंकि नैतिक प्रयास के द्वारा निर्वाण तो केवल मनुष्य ही पा सकता है मनुष्य से बढ़कर और कोई प्राणी इस सृष्टि में नहीं है और मानवता धर्म से ऊँचा कोई धर्म नहीं है।

परमसन्त हजूर
मानव दयाल जी महाराज
का
20-3-89 का सत्संग (मुजफ्फरनगर)

नाम दान प्रदान कीजे, गुरु दीन दयाल ।
चरन का नित ध्यान सुमिरन, चित न व्यापे काल ॥
सर्व समरथ सर्व अंग संग, सर्व जगत् अधार ।
शुद्ध मन से पद कमल को, करूँ निसदिन प्यार ॥
सिंधु भव अति अगम दुस्तर, सूझे वार न पार ।
विकल मन रहे सोच छिन-२, कैसे जाऊँ किनार ॥
दया कीजे मेहर कीजे, लीजे चरन लगाय ।
भक्ति दीजे तार लीजे, कीजे मेरी सहाय ॥
शब्द में रत रहूँ पल-२, सुरत पावे चैन ।
राधास्वामी दया सागर, भजूँ मैं दिन रैन ॥
सर्व वेदान्त सिद्धान्त गोचरम्.....

राधास्वामी !

आज मैंने आपके सामने जो मंगलाचरण रखा है, इसका सम्बन्ध उस सोपान से , जिसे हम सतनाम कहते हैं। मैंने आपको पिछले सत्संग में बताया कि सद्गुरु का मिलना पहिला कदम है। सद्गुरु के सत्संग में आने से सारे भ्रम दूर हो जाते हैं और सद्गुरु के सारे गुण धीरे-२ आपके अन्दर आ जाते हैं। शिवसंकल्प तभी होता है, जब अप

सद्गुरु के ऊपर निर्भर रहें तथा सद्गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलें। दुनिया में कोई भी वस्तु या गुण ऐसा नहीं है, जिसको ग्रहण करने के लिए किसी गुरु के सत्संग की आवश्यकता न हो। सत्संग के इस महत्त्व को बताते हुए तुलसीदास जी ने कहा है :—

जल चर थल चर नभ चर नाना।
जे जग जंगम जीव जहाना ॥
मति कीरति गति भूति भलाई।
जब जेही जतन कहाँ से पाई ॥
ते जानत सत्संग प्रभाऊ।
लोकहू वेद न आन उपाऊ ॥

जगत् के अन्दर जितने भी जीव हैं, चाहे वह जड़ वस्तुएँ हैं, चाहे चेतन जीव हैं, चाहे वे जल में रहने वाले हों, चाहे आकाश में उड़ने वाले पक्षी हों, चाहे पृथ्वी पर चलने वाले मनुष्य हों या जीव-जन्तु हों, जो कुछ उन्होंने प्राप्त किया है, जो गुण उन्होंने प्राप्त किया है, वह सत्संग से प्राप्त किया है।

मति कीरति गति भूत भलाई।

मति का मतलब है कि जिसकी मति अच्छी हो। अच्छी मति उसकी होगी जिसने सत्संग सुना होगा। लोग यश, कीर्ति प्राप्त करते हैं। लेकिन उन्हें कीर्ति कहाँ से प्राप्त हुई? उन्हें कीर्ति सत्संग के प्रभाव से मिली। गति का मतलब है चाल। हर चीज़ के अन्दर गति होती है। गति का गुण जिसने प्राप्त किया है, वह सत्संग से प्राप्त किया है या किसी न किसी बाहरी प्रभाव से किया है। भूति का मतलब है समृद्धि। जिसने समृद्धि प्राप्त कर ली, जो सम्पन्न हो गया, उसकी सम्पन्नता किसी न किसी की संगत

के कारण से ही हुई है। फिर है 'भलाई'। कुछ लोग भलाई करते हैं और कुछ लोग बुराई करते हैं। जिसका स्वभाव हो गया है, दूसरों की भलाई करना, उसमें भी भलाई का गुण, उसके किसी सत्संग के प्रभाव के ही कारण आया है। जगत् में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसकी प्राप्ति या जिसकी उपलब्धि बिना सत्संग के हो। 'ते जानत सत्संग प्रभाऊ' सारी महिमा सत्संग की है। ज्ञानी लोग जानते हैं सत्संग का प्रभाव क्या है ?

'लोकहू वेद न आन उपाऊ'।

इस लोक में या जगत् में किसी चीज़ की प्राप्ति का, सत्संग के अतिरिक्त कोई और उपाय नहीं है। सत्संग के लिए यह आवश्यक नहीं है कि कोई पढ़ा-लिखा ही हो। चाहे बूढ़ा हो, जवान हो, बच्चा हो, स्त्री हो, पुरुष हो, सबके लिए सत्संग का बराबर महत्त्व है।

'सब ही सुलभ सब दिन सब देसा।
सेवत सादर शमन कलेशा॥'

जितने भी जगत् के अन्दर धर्म हैं, सम्प्रदाय हैं, मत हैं, मार्ग हैं या योग-साधना के तरीके हैं, इन सबका उद्देश्य यह है कि जीव अपने आपको इस संसार के अन्दर जो क्लेश हैं, उनसे आज़ाद कर दें। यह तब हो सकता है जब वह तुम्हें मालिक से मिला दें। इसलिये मैंने कहा :—

'सर्ववेदान्तसिद्धान्तगोचरम्'।

वेद कहते हैं ज्ञान को और वेदान्त कहते हैं अन्तिम ज्ञान को आखिरी ज्ञान को, परमतत्त्व का ज्ञान, अपनी आत्मा का ज्ञान, अपने आपे का ज्ञान। इसी ज्ञान के लिए ही अनेक प्रकार के वेदान्त के सिद्धान्त प्रकट हुए। कपिल ने सांख्यशास्त्र लिखा। पतंजलि ने योगशास्त्र की रचना

की। ये सभी सिद्धान्त उस मालिक को ढूँढ़ने की कोशिश कर रहे थे, जो अगोचर है, तो ऐसे गोविन्दम् परमानंदम् सद्गुरु को नमस्कार है। यह गोविन्द परम आनन्द देने वाला है। गोविन्द का अर्थ है सत, रज, तम, से परे जो बिन्दु है उसे जानना जिसे सभी सिद्धान्तों ने अपनी-२ तरह ढूँढ़-२ कर बताया कि किस तरह से उसको पाओगे, जिससे तुम्हारे सब क्लेश समाप्त हो जायेंगे। उसका आसान तरीका है 'सहज मार्ग'।

"सब ही सुलभ सब दिन सब देशा।
सेवत सादर शमन कलेशा ॥"

सुलभ का अर्थ है आसानी से मिलने वाला। यह सत्संग हरएक के लिए है। यहाँ पर किसी धर्म का बन्धन नहीं है। आप रोज सत्संग में आ सकते हैं। यह सबको आसानी से मिलता है। सत्संग का मार्ग सहज होता है। 'सब दिन सब देशा' सत्संग हर देश में, हर स्थान पर और हर समय मिल सकता है। 'सेवत सादर शमन कलेशा'। सत्संग के अन्दर अदब से बैठो, आदर के साथ बैठो। सत्संग के प्रभाव से तुम्हें नाम मिल जायेगा। नाम के प्रभाव से जितने भी क्लेश हैं, उनका शमण हो जायेगा, उनकी शान्ति हो जायेगी। इस जगत् में क्लेश है 1) अविद्या या अज्ञान—आत्मा का ज्ञान न होना 2) अस्मिता—अहंकार 3) राग का मतलब है मोह। राग के अन्दर फँसावट है। राग के अन्दर मनुष्य फँसा होता है और एक ही व्यक्ति से राग होता है। 4) रागद्वेष वाला जो व्यक्ति होता है उसका शरीर अस्वस्थ हो जाता है, उसका मन खराब हो जाता है 5) अभिनिवेश अर्थात् मौत का डर। इन सभी क्लेशों का शमन सद्गुरु के सत्संग

को सुनने से हो सकता है। अब आपको सद्गुरु मिल गया, सत्संग मिल गया। सत्संग के अन्दर या तो गुरु आपको रास्ता बतायेग या नाम देगा। बाहरी सत्संग में सद्गुरु तुम्हें ज्ञान देगा, तुम्हें सच्चाई बतायेगा। लेकिन इसके बाद आन्तरिक सत्संग है सतनाम। आन्तरिक सत्संग क्या है? आन्तरिक सत्संग है जो नाम तुम्हें गुरु दे, उसे अन्दर पकाओ। अब नाम सब देते हैं और सभी जाप करते हैं। कोई राम-२ का जाप करता है, कोई कृष्ण-२ का जाप करता है, कोई 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जाप करता है। लेकिन नाम-२ में फर्क है। नाम दो प्रकार का होता है 1) वर्णात्मक नाम 2) धुनात्मक नाम। वर्णात्मक नाम वह होता है, जिसका हम वर्णन कर सकते हैं जैसे हाथी का वर्णन कर सकते हैं कि उसके चार टाँग हैं, एक पूंछ है, दो कान हैं। अतः जिसका वर्णन किया जा सके, उसे वर्णात्मक नाम कहते हैं। राम का नाम वर्णात्मक भी है और धुनात्मक भी है। धुनात्मक नाम वह होता है जिसकी ध्वनि शब्द के अन्दर ही होती है। सद्गुरु जब आपको नाम देगा तो नाम का नायी भी बतायेगा। अब कहते हैं कि कृष्ण का नाम जपो। यह नाम भगवान् कृष्ण की जीवनलीला का नाम है। एक राम वह है जो दशरथ का बेटा था, जिसने रावण को मारा था। लेकिन यह वर्णात्मक नाम है। लेकिन राम अपने आप में क्या था? राम अपने आप में परमतत्त्व था। भाव वह हो जो नाम की आखिरी चीज का हो, परम-सत्ता का नाम हो, मालिक का अपना निजनाम हो। वह नाम होगा धुनात्मक। जिसकी धुन सुनते ही तुम्हें पता चल जायेगा कि यह नाम किसकी ओर इशारा कर रहा है। इसलिये जो सद्गुरु है, जिसने नामी का अनुभव किया है और खुद नामी बन गया है, वह जो तुम्हें नाम देगा, वह

सच्चा नाम देगा। इसलिये सच्चा सद्गुरु, सच्चा सत्संग और सच्चा नाम। सच्चा नाम धुनात्मक होगा। यह धुनात्मक नाम सच्चे मालिक की आखिरी अवस्था, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव से परे का होगा। ऐसे नाम के जाप से नाम के सुमिरन से तुम्हारा सम्बन्ध उस परमआधार से हो जायेगा, जो सब बन्धनों से परे है। उस मालिक से सम्बन्ध होने से तुम्हारा शरीर, तुम्हारा मन और तुम्हारी आत्मा आनन्दित रहेगी। तुम मस्ती में रहोगे। दुनिया की सभी वस्तुओं का आपकी दृष्टि में विशेष मूल्य नहीं होगा। लेकिन वह धुनात्मक नाम जिसने दिया, उसे अनामी भी कहते हैं। जब उसका अनुभव करते हैं, तो कहते हैं कि न वह आकाश है, न पाताल है, न शब्द है, न प्रकाश है। वह अपने आपमें निज है, स्वयं है। बस है! है!! है!!! उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसे नाम की स्वामी जी महाराज ने इस प्रकार व्याख्या की है :—

नाहिं ख़ालिक मख़लूक न ख़ल्कत।
कर्ता कारन काज न दिक्कत॥
द्रष्टा दृष्टि नहिं कुछ दरसत।
बाच लक्ष नहिं पद न पदारथ॥
ज़ात सिफ़ात न अव्वल आख़िर।
गुप्त न परघट बातिन ज़ाहिर॥
राम रहीम करीम न केशो।
कुछ नहिं कुछ नहिं कुछ नहीं था सो॥

वहाँ कुछ नहीं है और कुछ है। राम उसका एक नमूना है। कृष्ण उसका एक नमूना है। लेकिन उसका अपना जो निजस्वरूप है, उसको शब्दों में बताया नहीं जा सकता, इसलिये उसको अनामी कह दिया जाता है। अब तुम्हें सद्गुरु मिला, उसका सत्संग मिला और सद्गुरु ने तुम्हें आन्तरिक

सत्संग के लिए राधास्वामी नाम दिया। गुरु ने जो तुम्हें सच्चा राधास्वामी दिया, वही राधास्वामी नाम अनामी का नाम है। अब तुम कहोगे कि अनामी का रूप क्या है? जिसने तुम्हें नाम दिया है, उसी सद्गुरु के रूप को अनामी का रूप समझकर उसके ही रूप पर ध्यान लगाओ। इसको कहते हैं नामदान। गुरु के चेहरे को देखते-२ वह चेहरा बदल जायेगा। न तुम रहोगे न वह रहेगा। यह प्रेम का रास्ता है। नाम का मतलब है, प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँच जाना, जहाँ पर नाम और अनामी सत्तनाम सद्गुरु सब समाप्त हो जाते हैं।

नामदान प्रदान कीजे, गुरु दीन दयाल।
चरन का नित ध्यान सुमिरन चित्त न व्यापे काल॥

मैं सोचता हूँ क्या मुझे नाम मिला? हाँ मुझे नाम मिला और अपने आप ही मिला। मैंने पहिले सद्गुरु की आवश्यकता को कभी महसूस नहीं किया, न किसीसे नाम-दान लिया क्योंकि मैं ब्राह्मण वंश में पैदा हुआ था, इसलिये सोचता था कि मुझे गुरु की ज़रूरत नहीं है। ब्राह्मणों के लिए तो मालिक खुद गुरु होता है। यह मेरा स्वाभिमान था। लेकिन मैं उस समय भी जीवन्मुक्ति की हालत में रहता था। मुझें जीवन्मुक्ति की हालत में सुख-दुःख तो आते थे, लेकिन मुझे कभी व्याप्त नहीं करते थे। मैं किसी काम में नाकामयाब नहीं रहा। जीवन्मुक्ति क्या है? जीवन्मुक्ति है कि हर समय मालिक में ही ध्यान रहे तथा हर जगह वह मालिक दिखाई दे। महाराज जी से मिलने के बाद मेरी अवस्था और गहरी होती चली गई।

राम-२ जपने से आपको सिद्धिशक्ति आ सकती है। आपका मन एकाग्र हो जायेगा। यदि आपका मन शुद्ध नहीं

है तो आपको उल्टा नुकसान हो जायेगा। यदि आपके मन में क्रोध है, तो आप और अधिक क्रोधी हो जायेंगे। यदि आप कामी हैं, तो आप और अधिक कामी हो जायेंगे। इसलिये जब तक आपका मन शुद्ध नहीं है, आपको नामदान देना जहर के बराबर है। जब तुम भक्ति की दृष्टि से नाम-दान लोगे, तब तुम्हारी क्षति नहीं होगी।

मैं अमेरिका में सत्संग दे रहा था। मेरे सत्संग में एक नौजवान अमेरिकन इंजीनियर भी आया। जब मैं सत्संग दे चुका, तो वह इंजीनियर मेरे पास आया और कहने लगा, "डा० शर्मा! आपने सत्संग बहुत अच्छा दिया है। मैंने किसी गुरु से नाम लिया है। उस नाम को जपने से मुझे भयानक स्वप्न आते हैं। मेरा एक आपरेशन हुआ था जिसमें मैं नपुंसक हो गया। मैंने गुरु जी से कहा कि मेरी यह हालत हो रही है। उन्होंने कहा कि मैं कुछ सहायता नहीं कर सकना।" बात क्या थी? कि यह इंजीनियर ईसाई धर्म को मानता था। इसको नाम ऐसा दिया गया जो ईसाई धर्म से मेल नहीं खाता था। गुरु जी ने मांस खाने को मना कर दिया था और कहा था कि तुम ब्रह्मचारी रहो। इंजीनियर गृहस्थी था। इंजीनियर के मन में था कि काम भोगना पाप है। इसलिये उस नवयुवक इंजीनियर को बीमारी हुई और वह नपुंसक हो गया। मैंने इंजीनियर को कहा कि तुम यह नाम जपना छोड़ दो और 'क्राइस्ट ॐ' कहा करो क्राइस्ट ॐ का मैंने उसे अर्थ भी बताया कि 'ॐ' धुनात्मक नाम है। ॐ का मतलब है ब्रह्मा, विष्णु, शिव और क्राइस्ट को चौथा पद समझ लो। इस नाम के जाप से उसकी सारी बीमारियाँ दूर हो गईं। यह नाम का असर है। कभी-२ नाम से उल्टा असर भी हो जाता है। असली नाम की निशानी क्या है? नाम जपने के बाद तुम्हें कष्ट नहीं होगा। यदि कष्ट हो भी

जाये, तो वह पूर्वजन्मों के कारण होता है।

"साईं के दरबार में कमी काहू की नाहिं।
बन्दा मौज न पावई, चूक चाकरी माहिं॥"

आप तो सच्चे सद्गुरु के दरबार में आ गये। आप जो कुछ चाहोगे, आपको मिल जायेगा। देने वाला स्वयं अपने लिए कुछ नहीं चाहता। इसलिये वह आपको सब कुछ दे सकता है। फ़कीर कौन है? फकीर वह है, जो परम-तत्त्व की अवस्था में रहता है। वह अपने लिए कुछ नहीं माँगता।

"मुक्ति की नहीं चाह मुझको, भक्ति प्यारी लाग।
राधास्वामी की दया से, भाग पूरन जाग॥"

यह शब्द दाता दयाल जी महाराज ने लिखा है। दाता दयाल जी महाराज की लाखों रुपये की आमदनी थी, लेकिन सब बाँट देते थे और हाथ पर रखकर दाल-रोटी खाते थे। वह फकीर थे। हालाँकि फकीर वही कर्म करता है, जो आम आदमी करता है, लेकिन वह जो कुछ भी करता है दूसरों की भलाई के लिए करता है। उसकी डाँट-फटकार भी आपको ऊँचा उठायेगी। 'बन्दा मौज न पावई' मनुष्य को दुःख क्यों होता है? क्योंकि वह भूल जाता है कि उसका सद्गुरु सब कुछ है। यदि वह थोड़ी देर के लिए भी भूल गया कि उसका गुरु परमतत्त्व है, तो वह अपने आदेश से पीछे हट जाता है और उसे कष्ट होता है। चाकरी क्या है? चाकरी है अपने आपको बिलकुल मालिक के सुपुर्द करना। अपने आपको सद्गुरु के सुपुर्द करने से आप तो निश्चिन्त हो गये, लेकिन सद्गुरु की ज़िम्मेवारी बढ़ जाती है। वह अपनी ज़िम्मेवारी को निभाता है।

'सर्व समरथ सर्व अंग संग, सर्व जगत् अधार।'

आप यह मान कर चलो कि गुरु सर्वसमर्थ है। जब शेर आता है तो बच्चा माँ की गोद में जाकर छुप जाता है कि माँ शेर को भगा देगी। जब तुम गुरु को सर्वसमर्थ, सर्वाधार मानकर के प्यार करोगे, तब तुम्हारे सभी काम बन जायेंगे।

'शुद्ध मन से पद कमल को करूँ निसदिन प्यार।'

तुम्हें किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं। केवल गुरु के चरणों की भक्ति माँगो। उसीको याद करो। एक फकीर ने बहुत सालों तक तपस्या की। जब परमतत्त्व का साक्षात्कार हुआ, तो उसने फकीर से कहा, "माँग क्या माँगता है? फकीर ने कहा, "कुछ नहीं" ईश्वर ने फिर कहा, "माँग ले क्या माँगता है?" फकीर ने कहा, "कुछ नहीं" तीसरी बार फिर ईश्वर ने कहा, "अरे भई कुछ तो माँग, तूने इतनी तपस्या की है इतना कष्ट उठाया है मेरे से प्रेम किया, कुछ तो माँग ले।" फकीर ने कहा, "अच्छा तो आप दुनिया के सभी जीवों को मुक्त कर दो।" ईश्वर ने कहा, "भई! यह तो मैं नहीं कर सकता।" फकीर ने कहा, 'तुम्हें किसने कहा था कि मुझे कुछ दे।" ईश्वर ने कहा, "जा तू स्वयं मालिक है।" इसी प्रकार जो सत्संगी आकर कह देता कि महाराज! मुझे अपने चरणों की भक्ति दीजिये आप ही सब कुछ हैं, मैं कुछ नहीं हूँ। वह सत्संगी सब कुछ पा जाता है।

'सिन्धु भव अति अगम दुस्तर, सूझे बार न पार।
विकल मन रहे सोच छिन-२ कैसे जाऊँ किनार।।'

यह सारा जगत् भव-सिन्धु है। हमारा मन भी भव-सिन्धु है, जिसमें अनेक समस्याएँ होती हैं, और सभी समस्याओं का समाधान होना मुश्किल हो जाता है। जीव इस भव के अन्दर आकर फँस जाता है। वह नहीं सोच

पाता कि वह क्या करे। जब मनुष्य इस अवस्था में आता है, तब भी सद्गुरु के पास आता हैं—'कैसे जाऊँ किनार'। यदि तुम पहिने ही सद्गुरु की शरणागत हो चुके हो, तो सभी समस्याएँ दूर हो जायेंगी।

'दया कीजे मेहर कीजे, लीजे चरण लगाय।
भक्ति दीजे तार लीजे, कीजे मेरी सहाय॥'

दया किस बात की? दया इस बात की, कि मुझे अपने चरणों में लगा लीजिये। सद्गुरु की दया सब लोग माँगते हैं, लेकिन जो सच्चे दिल से माँगता है उसे मिलता है। भक्ति का क्या अर्थ है? भक्ति का अर्थ है कि लगातार मालिक का ध्यान करते-२ मालिक में विलीन हो जाना। तारेंगे कैसे? यदि जगत् के अन्दर तुम खुद तैरने की कोशिश करोगे, तो थक जाओगे। जगत् का भव बहुत दुर्गम है। यदि तुमने अपने आपको सद्गुरु की शरण में अर्पण कर दिया और सभी तनाव हटा दिये हैं और कह दिया :—

"कश्ती खुदा पे छोड़ दे, लंगर को तोड़ दे।"

तब तुम इस प्रकार जगत् के भव में तैरोगे। लेकिन यदि तुमने हाथ-पाँव हिलाया अर्थात् जहाँ यह सोचा कि 'मैं हूँ' बस वहीं डूब जाओगे। इस प्रकार मुझे भक्ति भी दो और तार भी दो। मैं भक्ति के अन्दर इतना रत हो जाऊँ कि मुझे शरीर, मन, आत्मा तक का होश न रहे।

"शब्द में रत रहूँ पल-२ सुरत पावे चैन।
राधास्वामी दया सागर भजूँ मैं दिन रैन॥"

आन्तरिक सत्संग का अर्थ है शब्दयोग। आपने जिस गुरु से नाम लिया है, उस गुरु को सच्चे मन से परमतत्त्व मानकर, उसके दिये हुए नाम का जाप करो। जाप करते हुए आप मालिक से मिल जाओगे। लेकिन यह ज़रूरी नहीं

है कि प्रत्येक व्यक्ति सभी दर्जों से गुज़रे। आप राधास्वामी नाम का सुमिरन करते रहो। इस नाम के सुमिरन से तुम्हारे अन्दर सिद्धिशक्ति आ जायेगी जिससे शरीर के आभास चले जाते हैं। इसके बाद ध्यान करने से गुरु मूर्ति बन जाती दे, जिससे मन के आभास भी चले जाते हैं। उस समय चेतना नहीं रहती, केवल आनन्द ही रहता है। इसके बाद जब सत्संगी या भक्त शब्द को सुनता है तब शब्द सुनते-२ वह आत्मा से भी परे चला जाता है। इस अवस्वा में शरीर, मन और आत्मा के आभास समाप्त हो जाते हैं। इसे कहते हैं शब्द में रत होना। जहाँ पर अजपा जाप भी समाप्त हो जाता है। लेकिन यह हालत थोड़ी देर के लिए आती है। उस समय ऐसा लगता है कि हम मंज़िले मकसूद पर पहुँच गये। लेकिन हम मंज़िले मकसूद पर नहीं पहुँचे होते हैं। इस समय भी तुम्हें जीते-जागते सद्गुरु के सत्संग में आने की ज़रूरत है। क्यों सत्संग सुनते हुए, हर वक्त सेवा में रहते हुए, तुम्हारी वह अवस्था आयेगी जिसे अशब्द गति कहते हैं। मैं आपको बताना चाह रहा हूँ कि यह ज़रूरी नहीं है कि हरएक आदमी शब्द को सुने और प्रकाश को देखे। यदि कोई व्यक्ति सद्गुरु से प्रेम कर रहा है, और सद्गुरु ज़िन्दा है, तो उसे अभ्यास की भी ज़रूरत नहीं है। एक बार दाता दयाल जी महाराज हनमकुण्डा गये। वहाँ नन्दू भाई दाता दयाल जी महाराज के बहुत अच्छे शिष्य थे। दाता दयाल जी महाराज ने कहा "नन्दू भाई को बुलाओ।" एक सत्संगी नन्दू भाई के पास गया। उसने देखा कि नन्दू भाई जी समाधि में हैं। वह वापिस आया और दाता दयाल जी महाराज को कहा, "महाराज! वह समाधि में हैं।" दाता दयाल जी महाराज ने कहा, "जाओ नन्दू भाई को उठाओ, और कहो कि मैंने उसे बुलाया है।" वह सत्संगी

आया और उसने नन्दू भाई को समाधि से उठाया और कहा, "आपको दाता दयाल जी महाराज बुला रहे हैं।" नन्दू भाई ने कहा "दाता से कहना कि मैं समाधि में बैठा हूँ।" उस सत्संगी ने आकर दादा दयाल जी महाराज से ऐसा ही कह दिया। दाता ने कहा, "जाओ और नन्दू का कान पकड़ कर लाओ।" वह सत्संगी गया और नन्दू भाई को बुला लाया। नन्दू भाई हाथ जोड़ कर दाता के सामने खड़े हो गये दाता दयाल जी महाराज ने पूछा, "तुम क्या कर रहे थे ?" नन्दू भाई ने कहा, "मैं समाधि में बैठा था।" दाता ने कहा, "किसका ध्यान कर रहे थे ?" नन्दू भाई ने कहा, "आपका।" दाता दयाल जी महाराज ने गुस्से से कहा, "बेवकूफ मैं यहाँ बैठा हूँ और तू मेरा ध्यान कर रहा है।" नन्दू भाई ने दाता दयाल जी महाराज से अपनी ग़लती की माफी माँगी।

तो 'शब्द' में रत होने की अवस्था से भी परे जिसे प्रेम है, उसे पूरी शान्ति मिलती है। असली समाधि की यह निशानी है कि तुम्हें कुछ दिखाई दे या न दे, लेकिन तुम्हें शान्ति मिलेगी। गुरु तुमको बन्द डिब्बे में ले जायेगा। तुम्हें शब्द, प्रकाश का अनुभव हो या न हो। तुम मंज़िले मकसूद पर अवश्य पहुँचोगे। मंज़िले मकसूद पर पहुँचने की आखिरी अवस्था है जिसमें मैं न तू दोनों नहीं रहते। दाता दयाल ने इसी अवस्था को बताते हुए कहा है :—

ज़ात में अपनी हुआ गुम, तुम भी गुम होना कभी।
मंज़िले मकसूद पर, पहुँचोगे सुन लो मह अभी॥
इसलिये सबसे ज़्यादा, मुझको तुम पर नाज़ है॥
नाम रोशन तू करेगा, ये दिली आदाज़ है॥

जब महाराज जी ने चोला छोड़ा था तब मैंने उनको

तिलक लगाकर वेदमन्त्र पढ़े और दाता दयाल जी महाराज का ऊपर लिखा शब्द पढ़ा था। महाराज जी की तब वह अवस्था थी, जब उनको कोई इच्छा नहीं रही थी। सत्संग की भी इच्छा नहीं रही थी। इस अवस्था को तुम भी पा सकते हो। ज़रूरी नहीं कि तुम शब्द सुनो और प्रकाश देखो इसलिये कहा है :—

"शब्द में रत रहूँ पल-२, सुरत पावे चैन।
राधास्वामी दया सागर, भजूँ मैं दिन रैन॥"

सुरत के आराम में आने के बाद भी बाहरी सत्संग की ज़रूरत होती है। वह मालिक दयासागर इसलिए तो मनुष्य के रूप में आता है। रात-दिन उसी को भजूँ। उसी का ध्यान करूँ। उस जैसा ही बन जाऊँ। मेरी अवस्था भी राधास्वामी की अवस्था हो जाये।

आज का सत्संग आशीर्वाद का सत्संग है। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि आप सबको शरीर का स्वास्थ्य, मन का सुख, आत्मा का आनन्द और सुरत की शान्ति प्राप्त हो।

सबको राधास्वामी!

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,

परमप्रिय सत्संगियो :

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई !

इस मासिक सन्देश में दौरे की सूचना देने से पहिले मैं कई वर्षों से चले हुए दान, यज्ञ, तप: और कर्म के सन्तमत के दृष्टिकोण से दिये गये विवेचन की पूर्ण आहुति करना चाहता हूँ। मैंने इन चारों सोपानों के बारे में अपने अनुभव के आधार पर यह बताने की कोशिश की है कि सनातन-धर्म और सन्तमत किसी भी दृष्टि से एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। न ही सनातनधर्मी और न सन्तमत के अनुयायी या पन्थाई कर्म के सिद्धान्त को अस्वीकार करते हैं। पहिले भी कहा जा चुका है कि समस्त ब्रह्माण्ड कर्म के आधीन है। इस जगत् के अन्दर स्वयं परमतत्त्व आधार भी इस सिद्धान्त को भंग नहीं करता। किन्तु कर्म सिद्धान्त का प्रतीकार बताता है। वह प्रतीकार जगत् में कर्म करते हुए अपने आपको पराभक्ति के द्वारा सद्गुरु एवं दयाल पुरुष के शरणागत कर देता है। दया का सिद्धान्त कर्मबन्धन को एक ही जन्म में काट देता है।

श्रीमद्भगवद्गीता आदि से लेकर अन्त तक सन्तमत

के इसी दृष्टिकोण को सुचारु रूप से प्रस्तुत करती है यद्यपि जीव अपने कर्मों के कारण ही बन्धन में पड़ता है, तथापि वह अपने कर्म को निःस्वार्थ भाव से करता हुआ बन्धन से मुक्त भी हो सकता है। इसी मार्ग को या योग को निष्काम कर्मयोग कहा गया है। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को यहीं उपदेश देते हुए कहा है :—

कर्म ही में अधिकार है तेरा ।
परिणाम की मत कर चिन्ता ॥
फल को कर्म का लक्ष्य मत बना ।
न ही अकर्म से कर तू मित्रता ॥

निष्काम कर्मयोग हमें यह आदेश नहीं देता कि हम कर्म को त्याग दें या हमारा कर्म किसी भी लक्ष्य के बिना हो। कोई भी कर्म बिना उद्देश्य के नहीं हो सकता और हम क्षणभर के लिए भी कर्म के बिना इस जगत् में जीवित नही रह सकते। बात सिर्फ इतनी है कि हमारे कर्म का उद्देश्य सांसारिक सुख और लाभ न होकर एक ऐसा ऊँचा लक्ष्य होना चाहिए, जिसके पा जाने से हमारे लौकिक उद्देश्य और लौकिक आवश्ययताएँ बिना प्रयास के ही पूर्ण हो जायें। निष्काम कर्मयोग भो जोव को उसो परम शान्ति पर पहुँचा देता है जो वैराग्य के द्वारा या संन्यास के द्वारा प्राप्त होती है। आम लोग यह भूल कर बैठते हैं कि कर्म करने से व्यक्ति बन्धन मैं पड़ता है। अर्जुन इसी भ्रम में पड़ गया था। उसने भगयान् श्रीकृष्ण से पूछा, "एक ओर तो आप मुझे बता रहे हैं कि कर्म बन्धन में डालता है और दूसरी ओर आप मुझे युद्ध करने को कह रहे हैं। आपके वाक्य मुझे भ्रम में डाल रहे हैं। कृपा करके मुझे निश्चित रास्ता बताइये।" भगवान् कृष्ण ने उसको उत्तर देते हुए यही कहा, "सांख्ययोग या ज्ञानयोग जिस लक्ष्य पर पहुँचाता है, कर्मयोग भी जीव को उसी स्तर

पर ले जाता है। न ही केवल इतना बल्कि आरम्भ में हरएक साधक चाहे यह ज्ञानयोगी हो, चाहे कर्मयोगी, कर्म के द्वारा ही योग की सीढ़ी पर चढ़ता है और अन्त में उसी मंजिल पर पहुँच जाता है, जिस पर पहुँच कर जीव सभी कामनाओं और इच्छाओं से मुक्त होकर परमशान्ति प्राप्त करता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि कर्म का परमलक्ष्य क्या होना चाहिए? इस सम्बन्ध में भगवद्गीता में दो लक्ष्य बताये गये हैं—एक है आत्मशुद्धि और दूसरा है भगवत्प्राप्ति। आत्मशुद्धि के सम्बन्ध में, सत्पुरुष भगवान् कृष्ण ने कहा है :—

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥

अर्थात् योगी एवं साधक बुद्धि से, मन से, शरीर से, ज्ञानेन्द्रियों से हमेशा आत्मशुद्धि के लिए कर्म करता है। वह साधक ज्ञानयोगी हो सकता है कर्मयोगी हो सकता है या भक्ति योगी हो सकता है। क्योंकि प्रत्येक साधक आपु पर्यन्त क्रियाशील जगत् में रहता है और निरन्तर कोई न कोई कर्म करता रहता है। इसलिये कोई भी योग एक व्यापक दृष्टि से कर्मयोग ही है। सुमिरन ध्यान भजन भी कर्म है। ज्ञानयोग के द्वारा संन्यास की अवस्था को प्राप्त करना भी कर्म है। इसलिये हरएक युग में हरएक साधक अपने लक्ष्य की ओर कर्म से ही आरम्भ करता है। वह कर्म की सीढ़ी से उपर चढ़ता है और कर्म के शारीरिक, मानसिक, आत्मिक एवं पिंड, ब्रह्माण्ड तगा पराब्रह्माण्ड के दर्जों से गुज़रता हुआ अन्त से परमशान्ति एवं परमधाम को प्राप्त होता है। इसी ही दृष्टि से अर्जुन का मार्गदर्शन करते हुए सद्गुरु भगवान्

कृष्ण ने कहा :—

"आसरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥"

अर्थात्

योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील पुरुष के लिए योग कीं प्राप्ति में निष्काम भाव से कर्म करना ही हेतु कहा जाता है और योगारूढ़ हो जाने पर उस योगारूढ़ पुरुष का जो सर्वसंकल्पों का अभाव है, वही कल्याण में हेतु कहा जाता है। हम योगारूढ़ अवस्था को राधास्वामी अवस्था एवं ब्राह्मी स्थिति कह सकते हैं। हमने इसी संदर्भ में कहा है कि निष्काम कर्मयोग अपने आप में पूर्ण नहीं है। इसलिये हमने पहिले भी निष्काम कर्मयोग के वे लक्ष्य बताये हैं जिन्हें आत्मशुद्धि और भगवत्प्राप्ति कहा गया है। आत्मशुद्धि ज्ञान की पराकाष्ठा है और भगवद्प्राप्ति भक्ति की चरम सीमा है।

दूसरे शब्दों में सभी कर्मों को पूर्णता के उद्देश्य की ओर लगा देने से निष्काम कर्मयोगी निःस्वार्थ जीवन व्यतीत कर सकता है। आरम्भ में साधक अथवा योगी, किसी न किसी कर्म में जुट कर पूर्णता की सीढ़ी पर चढ़ता है। वह कर्म सांसारिक या व्यावहारिक हो सकता है। अथवा पारलौकिक या पारमार्थिक हो सकता है। इस दृष्टि से, शरीर द्वारा कर्म, मन द्वारा कर्म और बुद्धि द्वारा किया गया कर्म-कर्म है। पूर्णता प्राप्त करने के जिए जितने भी साधन व योग हैं, वह कर्म ही हैं। भक्ति मार्ग भी इस दृष्टि से कर्म मार्ग ही है। ज्ञान मार्ग कर्म मार्ग है। राजयोग, कुण्डलिनी योग और सुरत-शब्द योग सभी कर्म हैं। जब साधक इनमें से किसी प्रकार के कर्म में, अपने आपको भूल जाता है और उसका मन अमन हो जाता है, तो उसे वही अवस्था प्राप्त होती है, जिसमें वह इच्छाओं से मुक्त होकर आत्म-काम हो जाता है।

आत्मकाम साधक की इच्छाएँ और आवश्यकताएँ अपने आप पूर्ण हो जाती हैं। वह हर प्रकार की चिन्ता, भय आदि से मुक्त हो जाता है। वह न दुःख में दुःखी होता है न सुख में आपे से बाहर हो जाता है। उसे भय, क्रोध आदि नहीं सताते। जैसे पहिले कहा गया है, उसका स्वभाव उसी प्रकार अचल मर्यादा में रहने वाले समुद्र की भाँति होता है, जिसमें बाढ़ में आई हुई नदियों के समाविष्ट होने पर भी बाढ़ नहीं आती। यही कारण है कि वीतराग पुरुष मौज में रहता हुआ हर प्रकार की शारीरिक और मानसिक उथल-पुथल में समान रूप से व्यवहार करता है। भक्ति के मार्ग पर चलते हुए, इसी जीवन्मुक्ति की अवस्था को चश्में वाहदत अथवा समदृष्टि भी कहा जाता है। भक्त इस अवस्था में हर समय अपने इष्ट को देखता है और उसकी 'मैं' समाप्त हो जाती है। इसी अवस्था को अभिव्यक्त करते हुए कहा गया है :—

जब मैं था तब तू नहीं, जब तू है मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी वा में दो न समाहिं॥

पिछले मासिक सन्देश में मैंने इस अवस्था की व्याख्या की थी और बताया था कि इसके आगे भी एक और अवस्था है, जिसको मैं अगले मासिक सन्देश अर्थात् इसी मासिक सन्देश में प्रस्तुत करूंगा। यह अवस्था जीवन्मुक्ति से भी ऊँची अवस्था इसलिये है, क्योंकि इसमें न तो 'मैं' रहती है न 'तू' रहती है। यह अवस्था राधास्वामी योग की पराकाष्ठा है, जिसे सहज अवस्था कहा जाता है। इसमें साधक को यह अनुभव हो जाता है कि ईश्वर उसमें पूर्ण रूप से नहीं बल्कि अंश रूप में रहता है। जबकि साधक ईश्वर में पूर्ण रूप से रहता है। इसी अवस्था को बताते हुए कहा गया है :—

माला फेरूं न हरि भजूँ, मुख से कहूँ न राम।
मेरा राम मुझ को भजे, तब पाऊँ विश्राम॥

मेरे परमप्रिय परमतत्त्व के अंश सत्संगियो! सत्संग के प्रभाव से आप सभी इस अवस्था को पा सकते हैं। साधारण मनुष्य को पहिले-पहल, इस बेख्वाहिशी की अवस्था की समझ नहीं आती। जैसा कि मैंने पहिले बताया है कि इस अवस्था को पाने के लिए सांसारिक एवं लौकिक आवश्यकताओं का गला नहीं घोटा जाता और न उन्हें छोड़कर जंगल की राह ली जाती है। यह तो केवल अपने इष्ट को सब कुछ समझकर, उसीको सब कुछ समर्पित करके, एक ऐसी ऊँची दृष्टि को अपनाना है, जो माया और ब्रह्म, प्रकृति और पुरुष, निर्गुण और सगुण, साकार और निराकार के भेद-भाव को समाप्त कर देती है। यह एक ऐसी रहनी है, जिसमें कुछ करना-धरना नहीं पड़ता। इसीको सहज समाधि कहा जाता है।

साधो, सहज समाधि भली
गुरु प्रताप भई जा दिन से, सुरत न अन्त चली।
जहाँ-२ जावों सोई परिकरमा, जो कुछ करौं सो पूजा।
गृह वन खण्ड एक करि जानों, भाव मिटावो दूजा।
आखि न मूँदो कान न रूँधों, काय कष्ट नहि धारों।
खुले नैन हँसि-२ पहिचानों, सुन्दर रूप निहारों॥
शब्द निरन्तर मनुवां राता, मलिन वासना त्यागी।
उठत बैठत कबहूँ न बिसरे, ऐसी तारी लागी॥
कहहिं कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट कर गाई।
दुःख-सुख से एक परे परमसुख सो सुख रहा समाई॥

इस परमसुख की अवस्था को प्राप्त करने के लिए ही सद्गुरु, सत्संग और सतनाम को अपनाना पड़ता है। इस

विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राधास्वामी योग एवं सुरत-शब्द योग के अपनाने से मनुष्य का जीवन निष्क्रिय न होकर सहज का जीवन हो जाता है। दूसरे शब्दों में इस जीवनशैली से एवं रहनी से यज्ञ, ज्ञान, तपः और कर्म अपनाने का लक्ष्य पूरा हो जाता है। सतसनातन-धर्म एवं राधास्वामी धर्म या मानवता धर्म उसी सनातन-धर्म की चरम सीमा है, जिसका आदि और अन्त नहीं है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सनातन धर्म और सन्तमत एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। सच्चा राधास्वामी साधक किसी भी मत का खण्डन नहीं करता और सच्चा सनातन-धर्मी कभी भी राधास्वामी मार्ग एवं पराभक्ति मार्ग का खण्डन नहीं करता। यही व्यापक दृष्टि राधास्वामी मत के परमतत्त्व अवतार, पूर्णधनी, मालिके कुल दाता दयाल परमसन्त महर्षि शिवव्रत लाल जी वर्मन ने उस शब्द के अन्त में अभिव्यक्त की है, जिसमें उन्होंने कहा है :—

बुँद में सिंधु सिंधु में बुँदें, बुँद सिंधु दोऊ एक हुए।
बुँद सिंधु का झगड़ा मन में, उनके लिए अनेक हुए॥
राधास्वामी सतगुरु आये, भेद दिया पूरा-पूरा।
जो कोई भेद-भाव को मेटे, सतगुरु का सेवक सूरा॥

सन्तमत की दृष्टि से कर्म की व्याख्या को यहीं समाप्त करते हुए मैं आपको सत्संग-दौरे की सूचना देना चाहता हूँ। पिछले सन्देश में मैंने आपको 6 अक्टूबर 1989 तक के दौरे की सूचना दी थी। इस बार देहली के हवाई अड्डे पर आचार्य के० पी० वर्मा, उनके परिवार और बहुत से देहली के सत्संगियों के अलावा होशियारपुर से आचार्य शब्दानन्द जी, कु० साधना, श्री प्रदीप खन्ना भी स्वागत के लिए मौजूद थे। इसका कारण यह था कि दशहरे का

सत्संग तथा उससे पहिले मोदीनगर एवं मेरठ का सत्संग पहिले से आयोजित था। इसलिये 6 अक्टूबर को ही हमें मेरठ के लिए रवाना होना पड़ा। उसी दिन सायंकाल दोपहर 2 बजे के करीब गृहप्रवेश सत्संग हुआ, जिसमें मेरठ तथा आसपास के बहुत से सत्संगी सम्मिलित हुए। हालाँकि मैं बहुत लम्बी यात्रा करके आया था फिर भी सत्संग देते समय मुझे किसी किस्म की थकावट महसूस नहीं हुई। उसी दिन सायंकाल हम मोदीनगर आचार्य S. D. Sharma के घर पहुँच गये।

सायंकाल बहुत से सत्संगी मिलने के लिए आये। 7 अक्टूबर को मोदी इण्टर कालिज में प्रातःकाल और सायंकाल दो सत्संग आयोजित हुए। इन सत्संगों में मोदी नगर निवासियों तथा बुलन्शहर, मेरठ, बनवारीपुर आदि से आये हुए सत्संगियों की संख्या पहिले वर्षों से कहीं अधिक थीं। 8 अक्टूबर को प्रातःकाल आशीर्वाद सत्संग हमेशा की भाँति सफल रहा। मोदीनगर के सत्संगियों ने श्री एस. डी. शर्मा द्वारा आयोजित लंगर तथा सत्संगियों के निवास के प्रबन्ध में सहयोग दिया। ऐसे अवसरों पर सैकड़ों सत्संगियों का एक साथ बैठकर भोजन करना और रात को एक स्थान पर निवास करना मानवता परिवार के सदस्यों के परस्पर प्रेम और उनकी परस्पर सद्भावना का सुन्दर नमूना प्रस्तुत करता है। जब इस परिवार के सदस्य प्रातःकाल से लेकर रात्रि तक मेरे साथ रहते हैं और सत्संगों में सम्मिलित होने के अलावा अपनी समस्याओं को मेरे सामने रखते हैं, तो मुझे वास्तव में ऐसा लगता है कि ये लोग मेरे खून के रिश्तेदार हैं। उनकी समस्साएँ मेरी अपनी ही समस्याएँ हो जाती हैं। इसलिये मैं उन्हें अपने अनुभव

के आधार पर मार्गदर्शन देता हूँ। इस आदान-प्रदान से सत्संगियों का प्रेम और भी बढ़ जाता है। वास्तव में हमें हरएक सत्संगी को अपने परिवार का सच्चा सदस्य मानना चाहिए। उनको आपस में बिना किसी संकोच के अपनी घरेशू समस्याओं के बारे में विचार-विमर्श करना चाहिए। इस प्रकार यह मानव परिवार लोक और परलोक दोनों को सफल बना सकेगा। इसी सिलसिले में हमने मानव परिवार में मानव विवाह का सिलसिला जारी किया हुआ है। इसके फलस्वरूप कई सत्संगी परिवारों में रिश्ता जुड़ गया है और मैंने स्वयं सरल रीति से कई मानव विवाह सम्पन्न कराये हैं। ऐसे सम्बन्धों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि यदि योग्य सत्संगी परिवारों में योग्य वर ढूँढ कर रिश्ता करते हैं, तो वे नये परिवार बहुत सुखी रहते हैं।

मोदीनगर में हमारी दिनचर्या प्रातःकाल 5 बजे वन्दना सत्संग से शुरू होती थी। पहिले हम इस सत्संग को शेव का सत्संग कहा करते थे। इन्दौर में इस सत्संग पर काफी संख्या में लोग दूर-२ से आया करते थे। प्रातः-काल शेव करते समय प्रायः मेरे पास सत्संगी वार्तालाप के लिए आ जाते थे। इस लिए इस दौरान में मैंने सत्संग देने की प्रथा डाल दी थी। इस सत्संग में साधना या शब्दानन्द या दोनों अपनी इक्छा से दाता दयाल जी के शब्द पढ़ते थे और मैं उस पर सत्संग दे बेता था। 1985 से जहाँ-२ भी मैं दौरे पर गया, यह प्रातःकाल का सत्संग चलता रहा और उसमें सत्संगियों को बहुत आनन्द प्राप्त होने लगा। अक्टूबर 1989 से मैंने इस सत्संग का नाम वन्दना सत्संग रख दिया है। 7 और 8 अक्टूबर को

मोदीनगर में वन्दना का सत्संग चला। 8 प्रातःकाल को मैंने आशीर्वाद सत्संग दिया और प्रातः का भोजन जल्दी करने के बाद हम दिल्ली के लिए रवाना हो गये।

उसी रोज़ सायंकाल करीब 5 बजे हम सलवान पब्लिक स्कूल पहुँच गये। उस समय तक सौ से भी अधिक सत्संगी पहुँच चुके थे। रात्रि तक उनकी संख्या और भी बढ़ गई। मेरे कसरे में इन प्रेमी और श्रद्धालु सत्संगियों का ताँता बँधा रहा। सैकड़ों सत्संगी दुर्गापुर, हसनपुर, गाज़ियाबाद, बनवारीपुर, मोदीनगर, बुलन्दशहर जहाँगीराबाद, अलीगढ़ आदि स्थानों से रात को ही पहुँच गये। दूसरे दिन इनकी संख्या बहुत बढ़ गई। 8 बजे के 9 अक्टूबर वाले सत्संग के आरम्भ होने से पहिले प्रातः 5 बजे से मुझे इन प्यारे भोले-भाले श्रद्धालु सत्संगियों को मिलते-२ करीब 3 घण्टे लग गये। इनका अपना विश्वास और इनकी भक्ति उनके सभी काम बनाती है। किन्तु वह भोलेपन में यह समझते हैं कि मानव दयाल प्रकट होकर उनके काम करता है। मैं उन्हें हर बार समझाता हूँ कि उनका विश्वान उनकी श्रद्धा और उनके अपने कर्म ही उनके चमत्कारों का कारण होते हैं। इसलिये मैं उन्हें हमेशा यह सच्चाई बताते हुए कहता हूँ कि यदि वह मेरे अन्तर में अविनाशी तत्त्व को प्यार करेंगे और गुरु के असली स्वरूप को समझेंगे, तो वह चमत्कारों से ऊपर उठकर जीवन्मुक्त अवस्था को पा जायेंगे। मैंने पिछले 8 वर्षों मैं देखा है कि इस सच्चाई को बताने से और सच्चे दिल से सद्भावना और आशीर्वाद देने से सत्संगियों का विश्वास टूटता नहीं, बल्कि और भी पक्का हो जाता है। उनकी मनोकामनाएँ भी पूरी हो जाती हैं और वे ज्ञानी भक्त बन जाते हैं। इस प्रकार उनका लोक और परलोक

दोनों सुधर जाते हैं।

9 अक्टूबर के दोनों सत्संगों मैं सत्सछियों की भीड़ बहुत अधिक थी। सैकड़ों सत्संगी सत्संगभवन के तीनों तरफ बाहर खड़े हुए मस्ती से सत्संग सुनते रहे। मालिक की मौज से दोनों सत्संगों में ऐसा वातावरण बना कि सत्संगी घण्टों तक चुपचाप मानो समाधिस्थ होकर मेरी वाणी का रसास्वादन कर रहे थे। मैं स्वयं सत्संग देते समय शरीर और मन के आभास से ऊपर उठकर मानो किसी दिव्य धारा में बह रहा था। एक बार जब मैंने सत्संग देते हुए कु० साधना को शब्द की अगली कड़ी पढ़ने को कहा, तो वह भी सत्संग मैं इतनी महव थी कि उसे होश में आने में कुछ समय लगा। इन दोनों सत्संगों में आचार्य कैप्टिन लाल चन्द ने हमेशा की भाँति सत्संगियों को अपने अनुभव के आधार पर उद्‌बोधन दिया। इसी प्रकार आचार्य शब्दानन्द और आचार्य के० पी० वर्मा ने भी अपने सत्संगों से संगत को लाभ पहुँचाया। 10 अक्टूबर का सत्संग आशीर्वाद सत्संग था। इसमें भी सत्संगी हज़ारों की संख्या में भक्तिरस का अनुभव करते हुए लाभान्वित हुए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस बार सलवान स्कूल के दशहरे के सत्संग बहुत प्रभावशाली रहे।

अक्टूबर के महीने के सत्संग-दौरे के सम्बन्ध में कुछ सूचनाएँ गलत छप गई थीं। सरनोहेरी का सत्संग स्थगित कर दिया गया था। क्योंकि मुझे 22, 23 और 24 अक्टूबर को लखनऊ स्वामी रामतीर्थ की 116वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में पहुँचना था। इसलिये हम इन तीन दिनों के लिए रेल के द्वारा होशियारपुर से लखनऊ पहुँचे। इस बार हमारे साथ आचार्य शब्दानन्द, श्री नारायण दास डोगरा, कुमारी साधना और श्रीमती राजकुमारी भी थीं। श्री राम तीर्थ

जन्मशताब्दी के अधिवेशनों में मैंने हर वर्ष की भाँति अपने अनुभव व्यक्त किये। इन अधिवेशनों में दूसरे सन्त, आचार्य और विशेषकर संन्यासी मठाधीश भी शामिल थे। श्रावकों की संख्या हर वर्ष की भाँति हज़ारों तक पहुँच गई। इस अवसर पर मेरे सत्संग भी प्रभावशाली रहे। क्योंकि यह अधिवेशन रात्रि के समय होते थे, इसलिये प्रातःकाल और सायंकाल आचार्य कृष्ण मोहन तिवारी के घर पर सप्संग आयोजित हुआ करते थे। सत्संगी दूर-२ से इस अवसर पर श्री तिवारी जी के घर पर आये। इस दौरान में एक सत्संग पेपर मिल कालोनी में भी हुआ।

हम वास्तव में 21 अक्टूबर को ही लखनऊ पहुँच गये थे और 25 अक्टूबर तक लखनऊ रहे। इस दौरान में हम एक दिन के लिए गोरखपुर गये और एक दिन के लित कन्नौज भी गये। इस सम्बन्ध में मैं अधिक विस्तार से सूचना न देकर कुछ घटनाएँ आपको सुनाना चाहूंगा। हम गोरखपुर इसलिये गये क्योंकि वहाँ आचार्य श्री के० पी० वर्मा की माता श्री अस्वस्य चल रही थीं। श्री के० पी० वर्मा तथा उनकी योग्य धर्मपत्नी श्रीमती सुधा वर्मा जो हमारे साथ दिल्ली से रेल द्वारा लखनऊ तक आये थे, हमारे से एक दिन पहिले गोरखतुर पहुँच चुके थे। हम श्री कृष्ण मोहन तिवारी की कार से गोरखपुर पहुँचे। रास्ते में हमें राम जन्मभूमि से गुज़रते हुए देरी इसलिये लग गई कि एक मीलों लम्बा लाखों प्रदर्शकों का जलूस धार्मिक सद्भावना की दृष्टि से उस इलाके से गुज़र रहा था। हमारा विचार राम जन्मभूमि देखने का था, किन्तु देरी होने के कारण हमने निश्चय किया कि लौटती बार हम अवश्य इस पुण्य भूमि का अवलोकन करेंगे। हम जिस समय

गोरखपुर पहुँचे, सत्संग का समय हो चुका था। इसलिये हम थोड़े समय श्री के० पी० वर्मा के घर सत्संगभवन में पहूँच गये। इस सत्संग में गोरखपुर के हत्संगी वहाँ के बुद्धिजीवी और नागरिक बहुत अधिक संख्या में सम्मिलित हुए। सत्संग बहुत ही प्रभावशाली रहा। बहुत से बुद्धिजीवी प्रोफेसर वकील आदि सत्संग के बाद भी आचार्य वर्मा जी के घर पर मुझे मिलने आये और उनमें से कुछ लोगों ने आग्रहपूर्वक नामदान भी लिया। मानवता धर्म की सत्यता और उसकी सरलता विश्वभर में स्वीकार की जा रही है। मेरे परम प्रिय सत्संगियो! मुझे आपको यह बताते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि योरुप में, अमेरिका में, ट्रिनीडाड में कैनेडा, फिलीपीन, जापान और चीन तक आपके गुरुभाई, सत्संगी मौजूद हैं और वे अलग-२ धर्मों से सम्बन्धित हैं। यह सभी आपकी तरह मानव परिवार के सदस्य हैं और कभीं न कभी आपको मानवता के किसी विशाल सम्मेलन में भारत में ही मिलेंगे। मेरे मन में यह विचार आया है कि मानवधाम के निर्मित होने के बाद हम एक बार अपने मानव परिवार के विश्वव्यापी सत्संगियों को एक विशाल सम्मेलन में बुलायें, जहाँ आप सब एक-दूसरे से साक्षात् रूप से मिल सकें। यह बात इस मासिक सन्देश द्वारा आप तक पहुँचाते हुए मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं आपसे आमने-सामने बात कर रहा हूँ और आप भी मेरे इस प्रस्ताव को स्वीकार कर रहे हैं। इसी सन्देश द्वारा मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि मेरे इस सुझाव के सम्बन्ध में आप अपने विचार मुझ पत्र द्वारा लिखकर भेजें।

मेरे प्रिय अंश स्वरूप, सद्गुरु रूप सत्संगी भाई और बहनो! गोरखपुर का दौरा बहुत सफल रहा। आचार्य श्री के० पी० वर्मा जी की माता श्री बहुत प्रसन्न हुई और

उनकी अगाध श्रद्धा के कारण उनकी बीमारी में सुधार हुआ। अधिक विस्तार में न कह कर मैं आपको गोरखपुर से लौटते हुए कुछ अनुभवों से अवगत कराना चाहता हूँ। गोरखपुर से चलकर हम अयोध्या से पहिले मगहर में कबीर साहिब की समाधि पर रुके। इस समाधि के साथ-२ मुसलमान भाइयों द्वारा निर्मित कबीर साहिब की दरगाह है, किन्तु आनन्द की बात यह है कि हिन्दु और मुसलमान दोनों स्मारकों में जाते हैं और कबीर साहिब के गुण गाते हैं। कबीर साहिब के इस स्थान पर एक विशेष शान्ति का वातावरण है। हम समाधि पर कुछ देर ठहरे और वहाँ के प्रबन्धक साधुओं से वार्तालाप किया। उसके बाद हम दरगाह में गये और वहाँ भी मुसलमान कर्मचारियों से प्रेमपूर्वक बातचीत की। हम दरगाह में उस गुफा में भी गये जहाँ कबीर साहिब ने चोला छोड़ने से पहिले कई दिन समाधि लगाई थी। यहाँ का वातावरण भी बहुत सुखदायक है। प्रसन्नता की बात यह है कि भारत सरकार ने करोड़ों रुपये लगाकर इन दोनों स्मारकों को एक साथ सुन्दर बनाने का कार्य सौंप दिया है।

इसके बाद हम अयोध्या पहुँचे और हमने राम जन्म-भूमि के दर्शन किये। यद्यपि राजनीति के कारण इस पुण्य स्थान को विरोध का आधार बना दिया गया है, तथापि यह राम जन्मभूमि ही हिन्दु मुसलमानों में ही नहीं बल्कि सभी धर्मों के अनुयायियों में सद्भावना, प्रेम और परस्पर सहयोग एवं मानसिक शान्ति प्रदान कर सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस भवन में राम पैदा हुए थे और जिसे बाद में बाबर ने कुछ परिवर्तन करके मस्जिद का रूप दे दिया था, वास्तव में महाराजा दशरथ द्वारा निर्मित महल है। उस समय के महल के स्तम्भ अभी तक मौजूद

मौजूद हैं। करीब 50 वर्षों से इस भवन में भगवान् श्री राम की पूजा सत्संग और भजन कीर्तन होता रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान् श्री राम बाबर से हज़ारों वर्ष पूर्व प्रकट हुए और उन्होंने विश्वभर के लिए एक आदर्श राज्य की स्थापना की, जिसे रामराज्य कहा जाता है। चाहे हमारे मुसलमान भाई राम को अवतार न भी मानें, ऐतिहासिक दृष्टि से और शुद्ध हृदय से उन्हें यह स्वीकार करना होगा कि राम एक आदर्श राजा थे और जिस समय उन्होंने एक आदर्श राज्य का नमूना पेश किया उस समय खासकर भारतीय वर्तमान मुसलमानों के पूर्वज मुसलयान नहीं थे। उस समय वे हिन्दु भी नहीं थे। वे वास्तव में आदर्श भारतीय थे, आर्य थे अर्थात् ऋषियों की सन्तान थे। हिन्दु शब्द न वेदों में न भगवद्गीता में और न ही उपनिषदों और पुराणों में मिलता है। इसी दृष्टि से मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि जिस प्रकार मगहर में कबीर साहिब की समाधि और दरगाह एक ही ईश्वर का नमूना बनते हुए, प्रेम और सहयोग को सन्देश दे रहे हैं उसी प्रकार राम जन्मभूमि को धर्म व विरोध से ऊपर मानकर एक रामराज्य की प्रेरणादायक भूमि मानना चाहिए।

जहाँ तक लखनऊ और गोरखपुर के दौरे का सम्बन्ध है ऊपर दी गई सूचना आपके लिए काफी रहेगी। एक और सूचना जो आपके सुनने के लायक है, कन्नौज के एक दिन के प्रवास के सम्बन्ध में है। यूँ तो कन्नौज का दौरा हमेशा बसन्त के अवसर पर होता है। मैं कन्नौज एक दिन के लिए इसलिये गया था कि मेरे परमप्रिय स्वर्गीय मनोहर लाल की सुपुत्री का विवाह कुछ समय पहिले हुआ था और मैं विदेशी दौरे के कारण वहाँ नहीं पहुँच सका था। आप सब जानते हैं कि मेरा मानव परिवार के साथ एक अनूठा सम्बन्ध

है। मैं आपका भाई भी हूँ पिता भी हूँ, माता भी हूँ और सुहृदय मित्र भी हूँ। इसलिये मुझे जहाँ तक हो सके आप सब के दुःख-सुख में शामिल होना चाहिए और होता रहूंगा। मेरे परमप्रिय मनोहर लाल वर्मा की अनुपस्थिति में मुझे उस परिवार के लिए विशेषकर उनकी पुत्री के विवाह पर पिता का कर्त्तव्य निभाना था। केवल इसी विचार से हम सब कन्नौज एक प्रातः को पहुँच गये। सभी सत्संगी तुरन्त एकत्रित हो गये और उन्होंने बड़ी श्रद्धा से हमारा स्वागत किया। दीदारगंज के बहुत से सत्संगी भी वहाँ उपस्थित थे। सायंकाल एक विशाल सत्संग आयोजित हुआ जिसमें मकरन्दनगर ओर दीदारगंज के सत्संगी मौजूद थे।

सत्संग के बाद दीदारगंज के मुख्य सत्संगी, जिसमें मीराबाई भी सम्मिलित थी, मेरे पास आये और कहा कि कुछ समय के लिए मुझे दीदारगंज चलकर सत्संग देना चाहिए। मेरी अपनी आत्मा के अंश मेरे परमप्रिय इष्ट रूप सत्संगियो! आप जानते हो कि मैं 99% किसी को भी उसकी इच्छापूर्ति के लिए इन्कार नहीं करता किन्तु उस दिन मैं गोरखपुर आदि के सफर के कारण और लगातार कई दिनों से केवल तीन घण्टे नींद करने के कारण बहुत थक चुका था। इसलिये मैंने दीदारगंज के सत्संगियों को कहा, "मेरे प्यारे दीदारगंज वासियो मैं आपकी श्रद्धा को जानता हूँ और आपके प्रेम का आदर करता हूँ। दीदारगंज यहाँ से केवल दो-तीन कि० मी० दूर है। आपका यह आग्रह करना उचित है कि मुझे थोड़ा समय सत्संग के लिए दीदार-गंज को भी देना चाहिए। मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि इस बार मैं मनोहर लाल के परिवार के लिए आया हूँ दौरे पर नहीं आया हूँ। जब भी मैं सत्संग के दौरे पर आऊंगा, दीदारगंज को उतना ही समय दूँगा, जितना कन्नौज

में मकरन्दनगर को देता हूँ। इस समय रात के 10 बजने वाले हैं। मुझे विश्राम करना है। आप मुझे क्षमा कर दें।"

उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज ! हम आपसे इसलिये प्रार्थना कर रहे हैं, क्योंकि दीदारगंज में हमारे बहुत से सत्संगी और सम्बन्धी इसी दृष्टि से वहाँ इकटूठे रो गये हैं कि वे आपके दर्शन कर सकें। आप केवल 10, 15 मिनट के लिए वहाँ चलें और उन्हें दर्शन दें। मैंने उन्हें बड़े प्रेम से उत्तर दिया, "मैं आपकी भावना का सत्कार करता हूँ। किन्तु मैं इतना थका हुआ हूँ कि दीदारगंज चलने से मैं 12 बजे तक वापिस आ सकता हूँ और इसके फलस्वरूप मैं केबल 3 घण्टे ही सो सकता हूँ। इसलिये आप उन लोगों को जो बाहर से आये हुए हैं प्रातःकाल 6 बजे तक हमारे रवाना होने से पहिले यहाँ लायें और मैं उन्हें यहाँ मिलूंगा।" मेरे ऐसे कहने पर वह चुप हो गये। उनमें से दो-चार व्यक्ति दीदारगंज इसलिये चले गये कि वे सबको प्रातःकाल मकरन्दनगर में ले आयें।

किन्तु इसी दौरान में उन सत्संगियों ने अलग-२ बड़े दर्दपिल से श्री कृष्ण मोहन तिवारी को, नारायण दास और साधना को प्रार्थना की कि वे मुझे उनकी इच्छापूर्ति के लिए सिफारिश करें। इन तीनों ने मुझे मिलकर के बड़ी श्रद्धा से प्रार्थना की कि मैं थोड़े समय के लिए अवश्य दीदारगंज हो आयें। मैंने जब इनको अपनी थकावट और स्वास्थ्य की दुहाई दी, तो वे बेचारे चुप हो गये। इस स्थिति का नक्शा प्रातःकाल बदल गया। मैंने पहिली समाधि के बाद 4 बजे प्रातःकाल घोषित कर दिया कि हम सब 4-30 बजे ही दीदारगंज के लिए रवाना हो जायेंगे और वहाँ के सत्संगियों को मिलकर वापिस आ जायेंगे। मेंरी इस बात को सुनकर

श्री तिवारी, नारायण दास और साधना तथा दीदारगंज के ठहरे हुए सत्संगी बहुत प्रसन्न हुए। हम सब 5 बजे कार द्वारा दीदारगंज पहुँच गये जब कि वहाँ के सत्संगी मकरन्द-नगर आने की तैयारी कर रहे थे। वे सब गद्‌गद् हो गये। मैंने न ही उन्हें आशीर्वाद दिया बल्कि सभी को उस कमरे में बिठा दिया जिसमें वे सब मिलकर समाधि ध्यान लगाया करते थे। साधना ने दाता दयाल जी का एक शब्द पढ़ा और मैंने करीब आधा घण्टा सत्संग दे दिया। वास्तव में, यह छोटा सा सत्संग बहुत उच्चकोटि का था। सभी ने इसमें मस्ती का अनुभव किया। श्री नारायण दास विशेषकर इससे बहुत प्रभावित हुए और मेरी प्रशंसा करते रहे।

इस मासिक सन्देश को संक्षिप्त करते हुए मैं आपको केवल यह बता देना चाहता हूँ कि हम लखनऊ से लौटते समय एक दिन के लिए सहारनपुर उतर कर सरसोंहेरी ठहरे। सरसोंहेरी के सभी सत्संगी बहुत प्रसन्न हुए। पूरा दिन वहाँ ठहरने के बाद, सत्संग देने के बाद हम दूसरे दिन प्रातःकाल मैटाडोर से रवाना होकर 29 अक्टूबर को होशियारपुर पहुँच गये। श्री हरिवंश लाल एक रात पहिले ही मैटाडोर लेकर सहारनपुर पहुँच गये थे। इस सन्देश में यहाँ तक की सूचना काफी रहेगी। अगली सूचना मैं आपको अगले मासिक सन्देश में दे सकूँगा! इन शब्दों के साथ मैं आपको इस महीने की सद्‌भावना देता हूँ और सच्चे दिल से चाहता हूँ कि आप सुखी, स्वस्थ और आनन्दमय हों।

सबको राधास्वामी!

आपका फकीरमय
मानव

सांई के अनमोल नुक्ते

परमसन्त परम दयाल जी महाराज

धर्म-पंथ (5)

धार्मिक दृष्टिकोण तथा वास्तविकता की दृष्टि से यदि देखा जाये तो राधास्वामी मत तथा संतमत और सनातन धर्म कोई अलग सम्प्रदाय, धर्म या पंथ नहीं है, सब एक हैं। ऐसी स्थिति में परस्पर किसी एक सम्प्रदाय या धर्म वाले को धार्मिक पक्षपात या घृणा नहीं रहनी चाहिए। क्योंकि इस मतभेद ने ही तो हमें विभाजित कर रखा है।

वह अज्ञानी और मूर्ख है (6)

एक सत्संगी अपने गुरु के पास जा रहा था। मार्ग में एक व्यक्ति मिला। कहने लगा तू क्यों उस गुरु के पास जाता है? वह मूर्ख है। कुछ नहीं जानता न उसमें सिद्धि, शक्ति है। न ज्ञान ध्यान है। मेरा गुरु बड़ा, बुद्धिमान है, निपुण है। देख मैंने उसके पास रहकर निपुणता प्राप्त की है! सत्संगी ने उसकी बातें सुनी। और उत्तर दिया, मित्र! मैं अपने गुरु के पास केवल इस कारणवश जाता हूँ कि वह किसी की बुराई नहीं करते और न अपनी प्रशंसा करते हैं आपबीती सुनाते हैं। इस कारण मुझको उनमें श्रद्धा है। वह बड़ा लज्जित होकर पानी-२ हो गया।

अज्ञान और अनसमझी (7)

देखा गया है कि वह अज्ञानी और अनसमझ राधा-स्वामी मत के सत्संगी जिनकी इस वास्तविक शिक्षा की

हवा तक नहीं लगी और अपने आप को योग्य समझते हैं और अपने अज्ञान से मेरा विरोध भी करते हैं, और मैं इनको अज्ञानी समझकर हँस देता हूँ और मौनधारण कर लेता हूं। सब कुछ सुनता और सहता रहता हूँ और अवसर पाकर उनकी इस मूर्खता के विरुद्ध पुकार भी करता हूँ जिससे कि वह सँभल जाय और इस सन्तमन की शिक्षा से लाभान्वित हो सके।

देखो तो होशियार कोई नाम का नहीं।
हर शख्स समझता है, कि मैं होशियार हूँ।

आवश्यक अनुरोध

सभी सत्संगियों तथा मानव मन्दिर के पाठकों से परमार्थ के लिए एक विशेष अनुरोध किया जा रहा है। हमारी परम्परा में, किसी को भी दान देने के लिए मजबूर नहीं किया जाता। दान हमेशा वही फलता है, जो सच्चे दिल से दिया जाता है। आपको याद है कि परम दयाल जी महाराज प्रायः कहा करते थे कि यह मानवता धर्म फैलेगा! फैलेगा !! फैलेगा !!! आज हजूर मानव दयाल की दया तथा परिश्रम से परम दयाल जी की भविष्य वाणी सत्य सिद्ध हो रही है। हमारे मानव परिवार के सदस्यों की संख्या बढ़ रही है और दान वीर अपनी इच्छा से यथाशक्ति धन भी दे रहे हैं। जयपुर तथा आन्ध्र प्रदेश में नये भवनों का निर्माण हो रहा है। यह सब आप सबके सहयोग ही से तो सम्भव हो रहा है।

आपको यह तो मालूम है कि मानवधाम की स्थापना दोहाई गाजियाबाद के निकट बहुत ही सुन्दर जगह पर दो साल पूर्व की गई थी। सबसे पहले मानवधाम में फकीर सत्संग भवन का निर्माण शुरू हुआ। यह भवन का पहला हिस्सा है, जो हजारों सत्संगियों को बिठा सकेगा। परन्तु

अचानक महंगाई बढ़ जाने के कारण इसे पूरा कराने के लिए अन्दाज़े से चार लाख रुपया अधिक लग रहा है। पैसे के अभाव के कारण काम को पिछले महीने बन्द करा दिया था। परन्तु धाम तथा माल की रखवाली के लिए एक चौकीदार तथा दो गनमैन की तनखाह लगभग बाईस सौ रुपया महीना खर्च हो रहा है। हम चाहते हैं बरसात से पहले पहल छत पड़ जाये। अतः काम को इस उम्मीद से फिर शुरू कराया जा रहा है कि भक्त लोगों का अनुदान मिल ही जायेगा। यदि आप समझते हैं कि मानवता धर्म को फैलाने के लिए मानवधाम में फकीर सत्संग हाल अवश्यक है तो कृपया जल्द से जल्द अपना अनुदान सेक्रेटरी इन्टर-नैशनल सोसाइटी आफ ह्यमैनिज़म (International Society of Humanism) को मनीआर्डर, चैक या ड्राफ्ट द्वारा निम्न-लिखित पते पर भेजने का कष्ट करें।

श्री एस० डी० शर्मा
सेक्रेटरी इन्टरनैशल सोसाइटी आफ ह्यमैनिज़म
क्वार्टर नं० 2 टीचरज़ कालोनी
मोदीनगर, ज़िला गाज़ियाबाद (यू० पी०)।

शोक समाचार

अत्यन्त दुःख के साथ सत्संगी जन को सूचित करना पड़ रहा है कि परमसन्त परम दयाल जी महाराज के अनुज स्व० राय साहब श्री सुरेन्द्र नाथ शर्मा जी के दामाद श्री सत्य पाल शर्मा, आई० पी० एस०, रिटायर्ड डी० जी० पुलिस (श्रीमती क्षमा शर्मा के पति), का स्वर्गवास 4-4-90 को राँची (बिहार) में हो गया।

मानव मन्दिर परिवार परम पिता दयाल पुरुष से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को चिर शांति दें तथा उनके शोकाकुल परिवार को यह अपूरणेय क्षति सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

जनरल सेक्रेटरी

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी राधास्वामी ।
अलख अगम और अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
परमसन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया ।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर ।
दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी ।।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
राम भी हो और कृष्ण भी तुम ।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम ।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी ।।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार ।
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि ।।
राधास्वामी, राधास्रामी, राधास्वामी ।।
दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम ।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी ।।
राधास्वामी, राधास्वामी, राथास्वामी ।।

महत्त्वपूर्ण सूचना

सभी सत्संगी जन को सूचित किया जाता है कि हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी गुरु-पूर्णिमा का पावन-पर्व मानवता मन्दिर, होशियारपुर के प्रांगण में 8 जुलाई 1990 को सम्पन्न होगा । 7 बजे प्रातः आरती पूजन तथा 8 से 11 बजे तक परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल जी महाराज का सत्संग होगा। सभी सत्संगी भाई-बहन सादर आमंत्रित हैं।

Regd. No. 26265/4 JUNE 10th 1990

MANAV MANDIR NWHSP—7

Address

938 Sh. Shinde Vithal
976 S/o Arjan Rao Gouli Gudda
Banswada Post &
Tq. Banswada Distt. Nizamabad
A P.

From : Phone : 2639

MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR - 146 001